

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180135

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83-1/N 14 E Accession No. G. H. 1082

Author नार अमृतलाल

Title एक दिल हजार दास्तां 1955

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक :

पुस्तक निकुंज

१६४, मशकगंज

लखनऊ

आवरण पृष्ठ

मदनलाल नागर

मुद्रक :

रामचरन लाल श्रीवास्तव

षवन प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

श्रीमती रज़िया सज्जाद ज़हीर

तथा

श्रीमती चंद्रकिरण सोनरेक्सा

को

सम्रप्रेम

निवेदन

फ़ैशनेबिल प्रयोगवादी न होते हुए भी प्रयोगशील अवश्य रहा हूँ। कहने के लिए ही बात कहने का ढंग भी सोचा गया है। मात्र टेक्नीक के लिए कभी कोई रचना मुझसे नहीं हुई।

इस संग्रह की हर रचना कहानी की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती, कुछ-एक रेखाचित्र भी हैं जो स्वतंत्र संग्रह की बात में अलग नहीं रखे जा सके।

इस संग्रह में सन् '४६ से लेकर सन् '५४ तक की रचनाएँ संगृहीत हैं।

रचनाएँ पढ़कर पाठक अक्सर अपनी अमूल्य सम्मतियों से मुझे दिशाज्ञान कराते रहें हैं। पेशेवर समालोचकों की सम्मतियों से अधिक इन पत्रों से ही मुझे बल मिला है। इसलिए अपने पाठक वर्ग से मेरा यह साग्रह अनुरोध है कि इस संग्रह के संबंध में भी पत्र लिखकर अपनी अमूल्य सम्मति मुझे प्रदान करें।

विजय दशमी, सन् '५५

चौक

लखनऊ

अमृतलाल नागर

अनुक्रम

एक दिल हजार दास्तां

रोज़मर्राह

नाश और निर्माण

मुल्लर की महतारी

मेरे आदि गुरु

दफ़ीने की खुदाई

पड़ोसिन की चिट्ठियां

बंदिनी

क्रिस्सा बी सियासत भठियारिन और एडीटर बुल्लेशाह का

मल्का दूरिया का बेटा

दो आस्थाएं

अगति गति

एक दिल हज़ार दास्तां

कोल्हापुर के शालिनी सिनेटोन में ऊपर बने हुए एक-ईटिया, टीन के छप्पर पड़े कमरों की क़तार में एक कमरा मेरा भी था । वही मेरा घर और दफ़्तर था । टाट के झीने पार्टिशन के दूसरी तरफ़ पब्लिसिटी वाले कमरे में मौलाना रहते थे । वह इन्दौर के रहनेवाले और अपने प्रदेश के मशहूर कांग्रेसी लीडर थे । उस वक्त व्यक्तिगत सन्याग्रह के अपराध में जेल भुगत कर हाल ही में छूटे थे । देश सेवा ने बीबी बच्चो को बेगाना बना रक्खा था, अब उन्हीं से अपनापन निब्राह्ने के लिए काम की तलाश में भटकते-भटकते बम्बई और बम्बई से कोल्हापुर आ गये थे । मैं भी एक फ़िल्म के सवाद लिखने के लिए बम्बई से गया था । अनजानों के बीच हम अपने होकर मिले । ज़वान, वज़ादारी, तक्रलुफ़ को मौलाना अपने पुरखों की अमानत के तौर पर सहेज कर रखते थे, ओर करीने से बरतते थे । गुदर में उजड़कर तितर-बितर हुए अवध के घरानों में से एक उनका भी था । शालिनी सिनेटोन के उस टाट के पार्टिशन लगे, एक-ईटिया कमरे में मेरे लिए लखनऊ आवा़द होगया ।

घनघोर बरसात की रातों में जब कम्पनी के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट की छत छलनी बन जाती तब मौलाना का रेन बसेरा भी उजड़ जाता था । वह मेरे ही कमरे में मेज़ का दफ़्तर अलमारी में पहुँचाकर उसी

पर अपना बिस्तर जमाते थे । पानदान की कसम, हमने बड़े अच्छे दिन बिताये हैं । इमारत के नीचे साँपों से, और इमारत के अन्दर गनपती नाम के लाल रंग के बिसखोपड़ों से—जिन्हें मारना वहाँ वाले बुरा समझते हैं—घिरे हुए हैं, टीन की छत पर मूसलाधार बारिश का धौंसा बज रहा है, हवा बड़े जोर के साथ कम्पनी के 'मुतारखाने' में बने हुए लिफाफिया दरवाज़ों से जोर-आज़माइश करने के लिए बार-बार झपटती है और कुब्जे-कुन्डी से मजबूर बिचारे दरवाज़े अजीब चर-मर की आवाज़ के साथ खड़खड़ाकर रह जाते हैं ।.... ..लेकिन हम इन सबके आदी हो चुके थे । उस खड़खड़-धड़धड़ में नीद तो आती नहीं थी, अक्सर ऐसी रातें हम बातों में गुज़ार देते थे ।

कह ही चुका हूँ कि मौलाना बड़े शरीफ़, देवता आदमी थे । लेकिन मैं कोल्हापुर के रियासती माहौल में कभी-कभी ग़रीबुलवतनी की हाथ से तड़पकर छाँव पाने के लिए जान-पहचान की एकाध जगह में शहर भी चला जाया करता था । लौटने में कभी देर हो जाया करती थी । ताँगेवाले ग्वास तौर पर चोमासे की रात में एकाएक शालिनी सिनेटोन जाने के लिए राज़ी न होते थे । वह इलाक़ा आबादी से दूर, और साँपों की पैदावार के लिहाज़ से बड़ा उपजाऊ था । भय में भूत तो जुड़ ही जाते हैं । अक्सर पैदल ही लौटना पड़ता था । शालिनी पैलेस और झील किनारे की रोशनी भरी ज़िन्दगी के बाद जब एक हाथ में टार्च और एक में छड़ी लिए हुए मैं मौत लोक में क़दम रखता, तो मौलाना की याद आती—वह कितनी सादी और सधी हुई ज़िन्दगी बिताते हैं । और मैं ? गुनाह से दबे हुए लेकिन आदत से मजबूर शराबी की तरह रात के ग्यारह साढ़े-ग्यारह बजे जब दोनों तरफ घने पेड़ों से छाई हुई अंधेरी सड़क से गुज़रता तो वह डग-डग पर दिखाई पड़ने वाले साँपों और न दिखाई पड़नेवाले भूतों के अलावा मेरी लाख-लाख सूझती-अंधी तौबाओं से भर जाती थी ! सड़क के दोनों तरफ नीचे फैली हुई झाड़ियों-झंखाड़ों से तरह-तरह की

सीटियां सुनाई पड़ती थीं। तेज़ और दम साध कर बजने वाली सीटियां, मद्धिम झनझनाहट से गूजती हुई सीटियां, 'पुक पुक' की डबल गूज उठा कर कानों में खौलते तेल सी टपकनेवाली आवाज़ें, झिल्ली-झींगुरों की लम्बी मनहूस झंकार, मेढकों की टर्ग-टर्ग, बीच-बीच में ऊपर से घुघुओं और उल्लुओं का कर्कश स्वर साँस को सलाख की तरह खड़ा कर देता था। ऊपर, नीचे, दायें, बायें हर तरफ सांपों का ही डर बना रहता था। सघन पेड़ सड़क को सायबान की तरह ढँके रहते थे; जिसमें चौमासे की बादलों घिरी रात का अंधेरा और भी गहरा होकर सूनी सड़क पर छाता था। पेड़ों की नीची डालों से लिपट कर झूलते हुए साप भी अक्सर दिखाई पड़ जाते थे, ज़रा औचक से भी उनके नीचे होकर कोई गुज़र जाय तो सीधे ब्रह्माण्ड में ही मिष के दाँत गड़ें। अक्सर टार्च की रोशनी में खुश्की की लहरों जैसे बल खाते हुए ये ग्योफ़नाक कीड़े चमक जाते थे। मैं अपने भाग सराहता कि जान बची।

एक बार टार्च जलाते ही, चार पाँच क़दम बाये पर एक बड़ा नाग अपनी केंचुल छोड़ता हुआ दिखलाई पड़ा। टार्च की रोशनी पड़ते ही उसने तड़प कर फन उठाया। उसकी आँखों की चमक मेरी नज़रों को बाध गई। फिर न जाने कौन सी बुद्धि समाई कि मैं टार्च बुझाकर वही का वही खड़ा हो गया। बत्ती बुझा देने से अँधेरे में और भी तबियत उलझती थी, कही पैरों के पास ही न आ गया हो! न रहा गया, टार्च जलाई। नागराज जा चुके थे; उनकी ढाई-तीन फीट लम्बी केंचुल सामने पड़ी हुई थी। सारे डर के बावजूद उसे उठा लेने को जी चाहा। जल्दी से रुमाल निकाला, छड़ी के सहारे केंचुल उठा कर रक्खी और उसकी पोटली बाँधकर ले चला।

चलते-चलते रास्ते में ग़याल कहाँ का कहाँ ले गया! मैं सोचने लगा रुमाल में साँप की केंचुली के बजाय फूलों के गहने हैं जिन्हें

लेकर मैं आपसदारों की निगाहों से छिपता-कतराता पिछवाड़े की गलियों से चाहत की मंजिल की तरफ बढ़ता जा रहा हूँ। मुझे हँसी आ गयी।

आकर देखा मौलाना मेरे ही कमरे में मेज़ पर आसन जमाये बैठे हैं। मुझे देखते ही बोले, “आगये पंडित जी ! क़सम-खुदा की जो आज के बाद फिर कभी देर से लौटे तो अनशन करूंगा मैं। आप यों नहीं मानेंगे।”

मैंने हँसकर कहा, “आपके लिये तजुर्वे की सोगात लाया हूँ, मोलाना !” मैंने रूमाल खोल कर उनके सामने रख दिया। क्रिस्ता मुनकर बोले, “मानता हूँ आप लखनऊ के हैं।’ बातों-बातों में लखनऊ की रगीनी क्रिस्ता-गोई का फ़न बन गई। रोमान की तवारीख़ के वज़्र उलटते हुए मौलाना ने एक क्रिस्ता उठा लिया। फ़रमाने लगे :

“मेरे एक अर्जाज़ थे, और बड़े दोस्त भी। ज़मींदारी उनकी सीता-पुर में थी, मगर रहना-सहना ज्यादातर लखनऊ में ही होता था। आप तो खैर शौक़ के फूल ही चुनते हैं, मगर वह इश्क़ के बाग़ के माली थे। उन्होंने घर फूक कर तमाशा देखा। सदा दर्द ज़िगर में ही तड़पते रहे।

“एक बार का क्रिस्ता बतलाते थे कि उनकी मुलाक़ात एक लड़की से हुई, नाम था शबनम। उसमें कुछ बात थी जो उनके दिल में घर कर गई। बहनों से रिश्ते बने और बिगड़ गये, मगर शबनम गले का हार बन गई। बाला उमर, बड़ी-बड़ी आँखों में बाज़ार की शोषी और घर की लाज का सगम लहराता था, जिसे मेरे अर्जाज़ कभी पार न कर पाये; पुतलियों की भँवर में सदा के लिये डूब गये।

“शबनम नज़्म की गलियों में किसी ख़्मनादम कोठी के बचे-बुचे हिस्से में बंदरिया हँके पुनो के चाँद-सी रहती थी; जिसे देखा वही उस गली का होकर रह गया। मां अपने शबाब के दिनों में कही पान की दूकान चलाती थी। एक नवाब की नज़रे-इनायत हो गयी, खानगी

बनकर लखनऊ चली आयीं। जब तक नवाब रहे, दोरदौरा रहा। उनके बाद घरवालों ने उनको और शबनम को सब कुछ छीन कर, रोटी कपड़ों से भी मुहताज कर, घर से निकाल दिया। रियासत और इज्जत के साथ जिन्दगी बसर करने की आदत ने उन्हें बाज़ार में कोठा लेकर रहने से तो रोक दिया, मगर पेशा करने पर मजदूर कर दिया। दलाल के सहारे ग़ानगी कारबार चलने लगा। उम्र पाकर शबनम ने मां को सहारा दिया। उनकी उम्मीदों के नये सपने बंधने लगे, मगर मौत ने वे सपने पूरे न होने दिये। शबनम पड़ोस के मकान में बड़ी बी की सरपरस्ती में आकर बस गई। बुद्धन दलाल शौक़ीनों और रईसनादों में घूम-घूमकर उसके हाथ के कढ़े तकिये के गिलाफ़, मेज़पोश वग़ैरह बेचकर उसकी, उसके बड़े ग़ानदान और ऐशोइशरत की कहानी के बड़े-बड़े दीबाचे बांधता : 'कल तो ये हालत थी कि जिसको अपने हाथ से चुटकी उठाकर दे दी उसका घर पल गया, और आज वही ताज़े गुलाब के फूल सी मासूम बच्ची अपना पेट पालने के लिये मेहनत-मशक़त करती है।'

“मेरे अजीज़ से शबनम की मुलाक़ात तब हुई जब वह बड़ी बी के यहाँ रहने लगी थी। बड़ी बी की कमर और गर्दन से ग़म खाई हुई देह, जिसकी गोरी चमड़ी पर अनगिनत झुर्रियों से उनकी गई-गुज़री जवानी की रूह झाँकती, उस घर के टूटे-फूटे कोठे-दालानों में डाली से गिरे चमेली के फूल की तरह धीरे-धीरे इधर-उधर डोलती हुई बड़ी भली मालूम होती थी। हर किसी के दिल में उनको देखकर इज्जत पैदा होती थी। ताज़ा बुझी हुई शमा के गुल में मंदी चमक के मानिंद बड़ी बी की कापती हुई आवाज़ का हर पर्दा एक पर्दानशीन दर्द की झलक बनकर सुननेवालों के कानों में समाता। बड़ी बी अक्सर शबनम से कहा करती: ‘जिन्दगी बख़ैर बेटा, खेलना, ख़ूब खेलना—मगर देखना कि खेलते-खेलते ग़म के पहलू में किसी के दिल का चैन न खो जाये। खुदा न करे किसी की रातें नींद की दुश्मन बन जायें। जज़्बात

की सफेद चादर पर पाँव पोंछकर पाँव रखना बिटिया, कहीं दाग न लग जाये ।’

“तब कोई उनकी माँ से धुंधली पुतलियों को ग़ार से देखता, तपती हुई बालू पर तड़पती हुई मछलियाँ जिन पर आँसू भी नहीं पिघलते । हर बहार ग़िज़ा बन कर बड़ी बी की झुर्रियों पड़ो धुंधली आँखों में समा गई थी । चेहरा बर्फ की तरह सदा, सफेद । तोड़ने पर बर्फ के अन्दर से भी धुआँ निकलता है, लेकिन बड़ी बी का नाता उससे भी टूट चुका था । हर तरह से टूट चुकी थी । उस ज़माने की क्यारी के टूटे हुए गुलाब के फूल सी मुझी चुकीं थीं जिसकी खुशबू अभी तक लखनऊ की मिट्टी में बसी हुई है ।”

मौलाना रुके । मैंने पान पेश किये । दास्तान के नशे में हम दोनों ही झूम रहे थे । पल भर के लिए भी खुमार के तोर पर शालिनी सिनेटोन के उस टाट के पार्टिशन लगे एक-ईटिया कमरे को महसूस करना मुझे अच्छा नहीं लगा । नानी-दादी की कहानियाँ सुनते वक्त जैसे हुंकारी भरते हैं, मैंने भी कहा—“हां मौलाना, फिर ?”

मौलाना ने तकिये का सहारा लिया । पान की गिलोरी मुंह में एक दो बार इधर-उधर फेर कर गाल में दबाई और कहने लगे :

“हाँ साहब तो एक दिन की बात है कि मेरे अजीज जब पहुँचे, तो पता लगा कि शबनम पास-पड़ोस वालियों के साथ शाहमीना की दरगाह पर चादर चढ़ाने गई है । वह उसका इन्तजार करते हुए कुछ देर के लिये बड़ी बी के पास बैठ गये । नवाबी के रंगीन आलम से लेकर आज के खुदगज़ ज़माने तक उन्होंने बहुत कुछ देखा-सुना था ; कठिन आँचों में तबी थी । ज़िन्दगी के नये-पुराने तजुबों का भंडार लुटाते हुए बड़ी बी एक दास्तान सुनाने लगी । उनकी कांपती हुई बावाज़ धीरे-धीरे बयान कर चली :

“ ईद का दिन था ; बरस भर का त्योहर । शाही महलों में बेगमात

से मिलने के लिये शहर के बड़े-बड़े अमीरो-उमरा और अच्छे घरों की बड़-बेटियाँ भारी-भारी जोड़े पहनकर डोले-पालकियों पर चढ़ी चली जा रही थीं। महल के फाटक पर पालकियों का ताँता बंधा हुआ था। एक झाली होती है, दूसरी आगे बढ़ती है। कोई अन्दर से मिलकर लौट रही हैं; उनके पालकी के कहारों की पुकार पड़ रही है। चारों तरफ हटो-बचो की धूम मची हुई है। दूर-दूर तक डोले-पालकियाँ महलों में जाने के इन्तज़ार में खड़ी हैं। पीछे के कहार आगे वालों को हाँक मार रहे हैं कि जल्दी करो, जल्दी करो।

“उसी तरफसे बादशाह के एग चचाज़ाद भाई गुज़रे। घोड़े पर सवार चले जा रहे थे कि एकाएक नज़रें अटक गईं। एक डोले के परदे से किसी गुलबदन की ज़रदोज़ी का काम की हुई लहरियोंदार ओढ़नी का कोना बाहर लटक रहा था। ओढ़ने वाली कितनी अलहड़ होगी—सोचते ही नवाब का जी लहरा उठा। घोड़े से उतरे, डोले के नज़दीक आये, ओढ़नी ऊँची उठा दी। डोले वाली ने बाहर किसी का हाथ महसूस किया, तो परदे के नीचे से चार गोरी-चिट्ठी हिनाई उंगलियाँ सहम कर बाहर निकल पड़ीं। ओढ़नी अंदर चली गई, साथ नवाब साहब का दिल भी !

“डोले वाली के लिये तो आई बात पार भी हो गई, मगर नवाब साहब सीतलपाटी ले पड़ गए। दिल में ऐसी जली कि ईद होली सी दहक उठी। उन चार नाजूक उंगलियों वाली का न देखा हुआ भोला-सा मुखड़ा रात के सितारों में तरह-तरह से नक्श हो गया। अनजान ने ज़ान ले ली। जिसने देखा मुंह से हाय निकली, महलों में कुहराम मच गया, नवाब साहब दिन-बदिन सूख कर काँटा होते जा रहे थे। लोग धर-धर के पूछते कि क्या हुआ, कुछ तो कहिये कि बात क्या है ? बेचारे नवाब फ़क़त आँखों से नीर बहाकर निसाँस ढाल देते। कहते भी क्या ? जिसके माशूक का पता न हो उसके दिल का ठिकाना भी भला क्या पूछिये।

“नवाब साहब के हम-याला हम-नवाला थे एक मिर्जा साहब । न माने, एक दिन वसम खाकर इस पर तुल गये कि या तो गुम में शरीक होंगे, वरना यहीं पर जान दे देंगे । वह दोस्त क्या, जो दोस्त के काम न आए ?

“बहुत कहने सुनने पर-नवाब साहब ने अपने दिल की बात कही और दोस्त के गले से लिपट कर रोते हुए बोले कि मिर्जा, भला इस पागलपन का भी कोई इलाज है ? मगर मैं क्या करूँ ? ऐसी घड़ी का रोग लगा है कि जान लेकर ही जायगा ।

“मिर्जा बोले : ‘आप ये सोग-बिरोग छोड़िये; जैसे रहते थे रहिये । मैं वादा करता हूँ, खुदा ने चाहा तो महीने भर के अंदर ही जिसने आपको हलाया है वही पहलू में हँसाने भी आ जायगा ’”

मौलाना रुके, कहा, “पंडित जी, चाय पीजियेगा ? ”

मैंने कहा, “फ़िरसा पूरा कीजिये, मौलाना । अभी तो मेरी जान भी नवाब साहब के साथ ही वादे की सूली पर टँगी हुई है ।” मौलाना मुस्कराये, फिर ब्रँधे खयाल के नशे में उनकी आँखें लहरा उठीं । कहना शुरू किया : “खैर जनाब, मिर्जा साहब वादा करके तो चले आये, मगर यह समझ में न आया कि आखिर इस गुत्थी को मुलजायें क्यों कर ? उस दिन सैकड़ों डोले महलों में आये थे । कैसे पता चले कि उनमें लहरियों वाली कौन थी ? शहर में जितने कहारों के अड्डे थे, एक-एक करके सब छान मारे, चारों तरफ़ कुटनियां छोड़ीं, हर अमीर-उमरा की महरियां, बाँदियों को मिलाया—सब जतन करके हार गये । किसी तरह भी पता न चला कि लहरियोंदार जरदोज़ी की ओढ़नी ओढ़ कर कौन चोर महलों में घुसा था, जो नवाब साहब का दिल ले आया । मिर्जा मायूस हो गये । वादे की मुहलत पूरी होने में बस दो ही एक दिन और बचे थे । यही सोचें कि अगर बात न निभा सका तो दोस्त को क्या मुह दिखलाऊँगा । और खुदा न करे कि

नवाब साहब यह सदमा बर्दाश्त न कर सक, उन्हें कुछ हो गया, तो फिर मैं ही जीकर क्या कहूँगा....जी में ठान लिया कि बस आज रात खुदकुशी कर लेंगे ।

“ ‘दिन में घर का एक-एक कोना ढ़सगत भरी निगाहों से देखा; बेगम के साथ चौपड़ खेली, मीठी बातें कीं ; घर के नौकरों-चाकरों को बात-बात पर बरुशीशें दी कि मरने के बाद याद करें । शाम को छत पर चढ़े कि बस अब आखिरी दिन है, दो घड़ी यहाँ बैठ लें—जाने कितनी चाँदनी रातें यहाँ बेगम के साथ प्यार की बातों में गुज़ारी हैं ।

“ ‘ऊपर पहुँचते ही मिर्जा की आँखें चमक उठीं, कलेजा धक से रह गया । अपने और पड़ोसी के बीच की दीवाल पर कुछ कपड़े फेले हुए देखे, उनमें ज़रदोज़ी की काम की हुई एक लहरियोंदार ओढ़नी भी थी ।

“ ‘मिर्जा उलटे पांव नीचे लौटे । बेगम से पूछा, ‘ऊपर कपड़े किसके सूख रहे हैं ?’

“ ‘मेरे !’ बेगम ने सादा सा जवाब दे दिया ।

“ ‘मिर्जा का चेहरा मुर्दों की तरह सफेद हो गया । जी को कड़ा कर फिर पूछा, ‘ईदों के दिन महलों में क्या यही दुपट्टा ओढ़ कर गई थीं ?’

“ ‘हां, क्यों ?’ बेगम की परेशानी बढ़ रही थी, मियां वयों पूछ रहे हैं ।

“ ‘मिर्जा साहब ने और भी जी को कड़ा कर पूछा : ‘उस दिन कोई ख़ास बात हुई थी ?’

“ ‘बेगम उलझन में पड़ी । फिर सोच कर कहा: ‘और तो कुछ नहीं, मुझसे बेपर्दगी हो गई थी; दुपट्टा बाहर लटक रहा था । कोई शरीफ़ज़ादे बेचारे—’

“ ‘बात पूरी भी न हो पायी थी कि मिर्जा को गुश आ गया । इतनी देर में बेगम पहेलियों के जाल में तड़प-तड़पकर छुट गईं । होश आने पर मिर्जा ने बेगम को सब हाल सुनाया, कहा, ‘अब तुम मेरे

किसी काम की न रही। आज ही तलाक़ दूंगा, और आज रात को ही तुम्हें नवाब साहब के महलों में जाना होगा।’

“बेगम ने लाख सिर पटका, बहुत रोई, कहा: ‘यह तुम किस क्रूसूर की सज़ा दे रहे हो मुझे? ऐसा मैंने क्या गुनाह किया है?’

“‘मिर्ज़ा साहब का कलेजा फटने लगा। बड़ी मुश्किल से अपने ऊपर काबू पाया। बोले, ‘दोस्ती का हक़ अदा कर रहा हूँ, बेगम! तुम अगर ज़रा भी मुझे प्यार करती हो, तो मेरी लाज निबाहना।’

“‘यह कह कर तीन बार तलाक़-तलाक़ कहा और नवाब साहब के यहाँ चल दिये। जाकर हँसते हुए बोले ‘भाई जान, मुह मीठा कराइये आपकी मुराद बर आई।’

“‘नवाब ने गले से लगा लिया।

“‘उसी रात डोले के साथ मिर्ज़ा नवाब साहब के यहाँ गये। बेगम वही लहरियोंदार ओढ़नी ओढ़कर आई थी। डोला अन्दर पहुँचा दिया गया। नवाब साहब की बाँछें खिली जा रही थी। बार-बार पागल की तरह मिर्ज़ा को गले लगाकर यही कहते कि तुम्हारे एहसान का बदला किसी क़ीमत से न चुका सकूंगा।

“‘मिर्ज़ा हँसकर बोले: ‘पहले अन्दर जाकर अपना जी तो भर लीजिये। मैंने पहचानने में ग़लती तो नहीं की? फिर मैं इजाज़त लू और आप अपना दिल शाद फ़रमायें।’

“‘नवाब साहब अन्दर तशरीफ़ ले गये। ओढ़नी पहचानी। ओढ़ने वाली पर सौ जान से कुर्बान हुए। उनके तसव्वुर से कई लाख गुना ज्यादा हसीन थी। मगर उनके जानो-ईमान की मलका फूलों की सेज पर बैठी चौधार आसू बहा रही थी। बड़ी-बड़ी कममें दिलाने के बाद राज़ खुला। नवाब ज्यों के त्यों बैठे रह गये। दोस्त ने क्या देकर दोस्ती का हक़ अदा किया है। एक वह हैं, और एक—

“नवाब साहब बाहर चले आये। मिर्ज़ा ने पूछा, ‘कहिये, पहचाना?’

“हाँ मिर्ज़ा, पहचाना। तुम भला गुलामी कर सकते हो? मगर मिर्ज़ा, मुझे वहाँ जाते डर लगता है।”

“‘डर? और आपको? क्या फ़रमाते हैं नवाब साहब?’ मिर्ज़ा ने तअज्जुब के साथ कहा।

“‘सही अर्ज करता हूँ, मिर्ज़ा। मैं जब-जब सेज की तरफ़ बढ़ता हूँ, अँधेरे में रोशनदान से एक हाथ निकल कर मुझे मना करता है। मैं डर कर कांप जाता हूँ, मिर्ज़ा।’

“‘मुआफ़ी बरसों, मगर मुझे आपकी बात पर यक़ीन नहीं आता नवाब साहब!’ मिर्ज़ा सोच में पड़कर बोले।

“‘तुम खुद ऊपर जाकर देख लो... हाँ हाँ, बेखटके चले जाओ। भला तुमसे भी कोई पर्दा है?’

“‘दोस्त से इजाज़त पाकर मिर्ज़ा अन्दर तशरीफ़ ले गये। बेगम से पूछा: ‘तुमने बेजा ज़िद तो नहीं की?’

‘तभी रोशनदान में से एक हाथ झलका। मिर्ज़ा ने फ़ौरन ही तलवार चला दी। हाथ कट कर अन्दर गिर पड़ा।

“‘मिर्ज़ा फ़ौरन बाहर आये, मगर देखा कि नवाब साहब वहाँ तशरीफ़ नहीं रखते। शक हुआ। पीछे जाकर देखा तो उनके कटे हाथ से खून के धारे बह रहे थे।

“‘यह क्या किया, नवाब साहब?’

“‘नवाब तकलीफ़ को ज़ब्त कर मुस्कराने की कोशिश करते हुए बोले: ‘इसी नापाक हाथ ने दोस्त की बीवी का पाक दामन छुआ था। इसकी यही सज़ा थी, मिर्ज़ा!’

“‘मिर्ज़ा देखते रह गये।’”

कुछ देर के लिए हम दोनों ही चुप रहे। मौलाना ने एक ठंडी सांस ली।

ओठों पर दर्द की भीनी मुस्कराहट आई, बोले : “और क्या आपको यह भी बतलाना पड़ेगा कि यह कहानी बड़ी बी की आप बीती—”

“यह बात तो खैर कहानी शुरू होते ही साफ हो गई थी। क्रिस्ता बड़ा रंगीन और दिलचस्प है। दिल पर असर भी करता है.... मगर यहां कोई त्वास अच्छा असर नहीं पड़ा मेरे दिल पर। सच कहूँ मौलाना, कहानी मुझे किसी आशिकमिजाज लखनवी की रंगीन कल्पना सी मालूम देती है।”

मौलाना तब तक स्टोव के पास पहुँच चुके थे। शायद उन्हें मेरी बात अखरी। मेरी ओर मुह घुमाकर बोले : “मैं तो समझता हूँ कि इस कहानी में एक ज़बर्दस्त मॉरल है, पंडित जी।”

बात काट कर मैं तुरन्त बोल उठा : “यही न कि दूसरों की बहु-बेटियों के दुपट्टे पर आशिक होना चाहिए, और दोस्ती का फर्ज अदा करने के लिए कुटने-कुटनियों का जाल बिछाकर उन्हें भगा लाने की तरकीब करनी चाहिए ?”

मौलाना अचकचा कर मेरी ओर देखने लगे। जाहिर था कि इस कहानी की वाबत उनकी बरसों की राय पर मेरी बातें कुल्हाड़ी चला रही थीं, और उससे उन्हें तकलीफ महसूस हो रही थी। मौलाना जब बहस में उलझते या नाराज़ होते तो वह नकसोरे फुंला कर दो-एक बार सांस झटकार लेते थे; इस बार भी वैसा ही करके बोले : “पंडित जी, आप दूसरे ही नुक्ते-नज़र से देख रहे हैं। मेरी राय में दोस्ती की फर्ज-अदायगी ही इस कहानी की जान है—इसका मॉरल है। साथ ही उम बेचारी बड़ी बी की दुःखभरी कहानी भी कलेजा मसोस कर रख देती है।”

“मुझे उस पर भी रहम नहीं आता, मौलाना। वाजिदअली कल्चर में पलने वाले मिर्ज़ा या नवाब को तो मैं नज़र अंदाज़ भी कर सकता हूँ। मगर जिस गहर में बेगम हज़रतमहल ने औरतों की फौज बनाकर

अङ्गरेजों के छबके छुड़ाये हों, बड़ी से बड़ी आफतों से मोर्चा लिया हो, उस शहर और उस ज़माने की औरत इतनी लाचार हो कि—”

“भई पंडित जी, मियाँ दिल देखा करो, यार !” मौलाना स्टोव के पास से उठ आये । उनके चेहरे से दीनता टपकी पड़ती थी । वह मिर्जा, नवाब और बड़ी बी की तरफ़ से दया की भीख मांग रहे थे । मेज़ के पास आकर खड़े होते हुए बोले : “आप तो वकील की तरह बहस करने लग जाते हैं, क़िब्ला । अजी, हर औरत हज़रतमहल या लक्ष्मी-बाई नहीं बन सकती ; उसी तरह जैसे हर मर्द महात्मा गांधी नहीं बन सकता । हमें इन्सान को उसकी कमज़ोरियों के साथ प्यार करना चाहिए । कमज़ोरियाँ न हों, तो इन्सान इन्सान न रहे ।”

मौलाना का यह नर्म, हर एक के लिए हमदर्दी से भरा हुआ दिल सौ बातों का एक जवाब बन जाया करता है । जी को यों परस जाता है कि चुप होते ही बनती है । मगर मेरे मन में बात उबल रही थी । फिर भी तैश को सवार कर ठंडे मन से मैंने जवाब दिया, “मौलाना, मैं भी कमज़ोरियों का क़ायल हूँ । खुद भी अनजान में बहुत सी कमज़ोरियाँ लाद ली हैं । मगर जैसे-जैसे समझ आती जाती है, कमज़ोरियों से लगाव रखने की नीयत भी कम होती जाती है ।”

मौलाना मुस्कराये, कहा, “अजी कहाँ ? आप तो अभी भी अंधेरी रात में साँप की केचुल बटोरते फिरते हैं, हज़रत ! आखिर हैं तो आप भी नवाब साहब के ही हम-वतन ? ओर जब तक आप ऐसे करम फ़रमाते रहेंगे, बहुत सी शबनम और बड़ी बी जनाब की जूतियों के तुफ़ैल से परवरिश पाती रहेंगी । अच्छा खैर होगा, आइए चाय बन गयी ।”

मौलाना ने मेरी कमज़ोरी पर छीटा मार कर मन के उबलते हुए हक़ को अपनी जगह पर बिठा दिया, यह सही है, मगर इससे वह ठंडा नहीं हुआ । बात घुमड़ती रही । रह-रह कर इसी का मलाल होता कि

अपनी ही बुरी आदत से मैं मन की सचाई का मुंह बंद कर देता हूँ । मुझे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था ।

चाय बनी, मेरा ध्यान उलझनों के समुद्र में गहरा डूब रहा था । मौलाना मुझे अनमना देख कर जल्द ही अपने कमरे में चले गये । मैं अपनी आदत पर गौर करता रहा, सचमुच मौलाना की मीठी मार ने मुझे आज बुरी तरह घायल कर दिया था ।

और यह भी सच है कि यह आदत अब महज़ एक आदत रह गई है, इसमें वह तड़प नहीं रही जो कभी आठों पहर आह-वाह और हाय की मौज़ो में लहराती हुई आंखों में रंगीन ख्वाब के नशे को दुबाला किया करती थी । अब असलियत समझ में आ गई है । फिर भी कभी काम-काज से थक कर, अक्ल के दड़बों में पलने वाले तरह-तरह के ख्यालों से ऊब कर जी चाहता है कि अपने आप को मस्ती ने भर लूँ, थोड़ी देर के लिये बेफ़िक्र बन जाऊँ, इतना खुददार हो जाऊँ कि दुनियाँ की हर चीज़ मेरी परवाह करती नज़र आये । पैसे फेंक कर यही ख़व्त रंगीन मिजाज़ी की सूरत अस्तियार कर लेता है ।

यह आदत लखनऊ की ही देन है । इसे खुशनसीबी कहें या बदनसीबी मानूँ कि मैंने अपने वचन में उम लखनऊ की आगिरी उड़ती हुई सी झलक देखी है जिसमें ओढ़नियों पर आशिक होने वाले फ़नकार रहते थे । कनकौव्वों में नोट चिपकाकर उड़ाये जाते थे । शाम को चौक के संकरे बाज़ार में चिकन के कुर्ते, दुपलिया टोपी, दुपट्टा, धोती, या छकलिया अंगरखा, नुक्केदार दुपलिया, चूड़ीदार पाजामा, पट्टेदार बाल और मुरमई आंखों का मेला लगता था । उनके साथ रेशमी रुमालों से ढंके हुए, मुट्ठियों में भीजते हुए हज़रत बटेर भी तशरीफ़ लाया करते थे । मेहंदी से रची हुई दाढ़ी वाले एक मिर्याँ जी भी लम्बा कुर्ता और ढीली मोहरी का पाजामा पहने कंधे पर दुपट्टा ढाल कर पतली सी संदूकची में इत्र-फुल्ले, अंजन, मंजन और मिस्सी

के अलावा नये पैशन के पाउडर, लेवेण्डर और 'ओटो दिल वहार' लिये कान पर हाथ लगा कर कोठे वालियों को पुकारा करते थे, माशूकाना '...!...' गोल दरवाजे के फाटक पर फूलों के गहने और गजरे लेकर माली अपने बेला-चमेली और मोतिये की वाहवाही में आप ही भगन रहते थे। रईसों के यहाँ शादी-ब्याह के मौकों पर दिनों और हफ्तों तक नाच गाने और भाड़ों की महफ़िलें हुआ करती थीं। यहां साग-सब्जी तक गा-गा कर बेची जाती थी। गली सड़कों में हर वक्त बड़े-बड़े तानसेन राग अलापते घूमा करते थे। जगह-जगह मुशायरे होते थे, और अक्मर होते थे। कहीं तीतर लड़ाए जाते थे, कहीं बटेर और बुलबुल। हर तरफ मस्ती और बेफ़िक्री का आलम था।

लखनऊ उस वक़्त भी अपनी पुरानी कहानियों से नई जिन्दगी में रस पा रहा था। खरबूजे और आमों की फ़सल में घर के बर्तन-भाड़े और बीबी के मुथने तक बेचकर ज़बान को रस देने वाले शौकीन मौजूद थे। अफ़ीमचियों, मदकचियों, चन्दूबाजों और निठल्ले गुपफ़रोशों की फौज नए जमाने से पिट चुकी थी, मगर मोर्चा नहीं छोड़ा था। जहाँ महफ़िल हो रही हो, वहाँ दरवाजों के धक्के और गालियाँ खाकर, चिल्ले के जाड़े में फ़क़्त मजलिसी रईसों के क़ीमती गर्म कपड़ों के ध्यान में रात काट कर जानों और बाइयों के सुरीले गलों पर निछावर होने वाले मुफ़लिस तमाशबीन भी देखने को मिल जाते थे। दिवाली की जमघट में कनकौव्वों की किस्मों और रंगों की मीलों लम्बी फ़ेहरिस्त लोगों की जबानों पर दौड़ती थी: सवा का तीन, अद्धा, छः का दस, आढ़ा-सीधा-पौनतावा, पट्टीकम ताव, कलीदार, मुक्कैशिया, झुल-झुल, बाँची, दमड़ची, जमधड़, खरबूजिया, लंगोटिया, सिघाड़िया, करौंदिया, तौक़िया, मालेदार, लट्ठेदार, पट्टी-दार, तिपन्ना, दुपन्ना, दुबाज, चांदतारा, मांगदार मुराहीदार और न जाने कितने नाम और किस्में। बुढ़िया की दमड़चियाँ मशहूर थीं। यूसुफ़ द्रुसैन के बड़े कनकौव्वों की धूम थी। कनकौव्वेबाजों में

मुहम्मद हादी, नवाब कज़ल, छोटे बड़े आगा, फ़त्तन साहब, बाबू भसड़े, लाला बेलीमल के नाम जवाहरलाल, सुभास बोस और सरदार पटेल की तरह मशहूर थे। जली खुरशैद और ठाकुर नवाबअली के पेचों के किस्से बखाने जाते थे। लाला मुन्नेलाल कागज़ी ने तो पंच-खंडी इमारत इसलिए बनवाई थी कि दिखाव अच्छा रहे, पेंच लड़ाने में सुभीता हो। लड़के लंगड़ और लग्गे लिये दौड़ा करते थे। दिल्ली और कानपुर से मैदान बदे जाते थे; बड़ी-बड़ी शर्त्ते लग जाती थी कि फलों के हाथ में कनकौन्वा रहा तो दूनी चौपड़ पड़ जायगी। एक-एक पेंच पर वह शोर मचता था कि कानों के पर्दे फट जायें। “अबे झोल है, पेटा है; अबे नीचे घर से, अबे ऊपर घर से; वो कन्नी से मारा, वो काट्टा!” दिवाली में खिलौनों और आतशबाजी की भी धूम रहती थी। गोल दरवाजे से अकबरी दरवाजे तक खिलौनों की नुमायश लगती थी, फलों की तश्तरियाँ देखिये तो मालूम पड़े कि डाल के ताड़े रखे हैं, उगली के पोर बराबर इकन्नी के सोलह पन्धी मिलते—सफाई ऐसी कि क्या मजाल नकल और असल में भेद रह जाय। फिर भी बड़े बुजुग कहा करने थे कि अब वह बात नहीं रही। लोग मेवा को याद करते जो मूर्तियाँ बनाने में अपना सानी नहीं रखता था। मास्टर काशीनाथ के खिलौने की सजावट देखते ही बनती थी। फर्शी आतिशबाजी ऐसी बनती थी कि कपड़े या हाथ पर जलाइये, और वाल बांका न हो।

मुहर्म्म के ताज़िये, मसिये और इमामवाड़ की रोशनी देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। क्वार में सआदतगंज की झांकियां, नौटकियां और रहम-भरथरी की धूम मचती थी। दुर्गा टुंडे ऐसी भरथरी खेलते थे कि जब मरे तो शहर भर की मंडलिया उनकी लाश के साथ नाचती गाती हुई गयीं। मुग्रह की चली अर्थी रात के दो बजे गुलाल के मशान पहुँची। पार की इंदर सभा मशहूर थी। खयालबाजों में लखनऊ के कलगीवाले सरनाम थे। शम्भू शायर खत्री के घराने के

बाबा मयाराम और हाफिज अहमदअली जहाँ चंग लेकर बैठ जायें, वहाँ तेल रखने को जगह न मिले। लखनऊ कलावन्तों का घर था। भांडों में खिलौना और फ़जलेहुसैन जिस महफ़िल में न हों, वह महफ़िल वीरान; नक्कालों में बड़े पैटवाले क़दर और मुक़द्दर न हों तो हंसी के फ़व्वारे कैसे छूटें ?

कहीं नाच होता तो लोग बिन्दा कालका की जोड़ी को याद करते थे। तवायफ़ें बिन्दा महाराज का नाम लेकर पैरों में धुंधरू बांधती थी।

बाँकों का बाँकपन निकाल कर गो उन्हें सीधा कर दिया गया था, मगर शरीफ़ों के लड़के उनके डर से तब भी अकेले घर से निकल नहीं पाते थे। उनके क्रिस्से तो अभी दो-तीन बरस पहले नब्बन इक्केवाले से सुने थे : “हुज़ूर, यह शहर ही बाँकों का है। एक से एक नामी उस्ताद यहाँ पर हो गये हैं। सौ-सौ पट्टों को साथ लेकर बाज़ार में निकलते थे। बड़े-बड़े रईस तक उनसे थर्राया करते थे बंदानवाज़ !

“यहाँ एक हरनासिंह महाराज हो गये हैं, हुज़ूर। बिरहमन थे, एक ही फिकैत। और तमंचा तो ऐसा चलाते थे कि उड़ती चिड़िया भूनकर रख दें। एक बार हुज़ूर बाज़ार में बैठे थे तो उधर से शाहजी की सवारी निकली। और शाहजी का यह हाल था ग़रीबपरवर, कि शहर के सबसे बड़े सेठ-बारशा तक उनकी इज्जत करते थे—हुज़ूर अल्ला आपको जीता रखे—जी हाँ ! तो वह तामशाम में चले जा रहे थे, पचास सिपाही साथ में। बड़े रुआब थे उनके हुज़ूर, बड़ा दबदबा था। कुछ लहर आ गयी तो बैठे-बैठे मूछों पर हाथ फेर लिया। ऐ है, बस कुछ न पूछिये बन्दानवाज़, इस ज़री बात में गोलियाँ चल गयीं। शाहजी का दस्ते मुबारिक हुज़ूर मूछों से पलटा भी न होगा कि दन्न से गोली दाग दी हरनासिंह महाराज ने। वह तो कहिये क्रिस्मत के धनी थे, बच गये, गोली तामशाम में बने शेर को लगी वरना ढेर हो गये होते। नम्बरी निशानेबाज़ थे, सरकार। लखनऊ के बाँके थे — उस्तादों के

उस्ताद—उनसे बर्दाश्त नहीं हुआ हुआ कि कोई उनके सामने मूछों पर ताव देके निकल जाय। यह उस वक्त के बाँकों की आन थी। क्या मजाल कि उनके सामने कोई टेढ़ी तिरछी-टोपी पहनकर निकल जाये, उनके मनपसंद का जामा-जोड़ा पहन ले या उनके सामने मूछों पर ताव फेरे। मगर शाही हुक्म के आगे हरनासिंह भी कुछ नहीं थे, हुआ। मुश्कें कसवा दी गयीं उनकी। भरे दरबार में जाने आलम ने कोतवाल से फ़रमाया कि क्या देखते हो, सूली पर चढ़ा दो फ़ौरन। अल्ला आपको जीता रखे मालिक, अब ज़री शाहजी का जिगरा भी फ़रमाइएगा। लचक के उठे, झुकके ताज़ीम की, ओर अर्ज करने लगे कि आलीजाह, मेरी तो दोनों आखों का सवाल आ गया है। इधर देखता हूँ तो जहाँपनाह का हुक्म हो चुका है, किसकी मजाल कि फ़ौरन अमल न करे; और उधर नज़र जाती है, तो हुआ मेरे पुरोहित की जान जाती है।

“बादशाह सलामत ने उन्हें छोड़ दिया हुआ। ऐसे इफ़्क़ाल के आदमी थे। अरे हुआ, इन्हीं हरनासिंह का क्रिस्सा है कि पीर बुख़ारे में बाइशा के साले रहते थे। पंचभैयों के नाम से मशहूर थे। अपने यहाँ काप्तैन का जुआ कराते थे, बन्दामवाज़। उनका यह क़ायदा था कि खुद जीते तो कोई बात नहीं, और जो कोई दूसरा जीता तो उसे जान से मार कर रुपया छीन लेते थे। बाइशा के साले थे, इसलिए उनका कोई कुछ बिगाड़ तो सकता नहीं था, जो चाहते थे कर गुज़रते थे। मगर हरनासिंह महाराज उनसे भी रुपया ऐंठ लाते थे, हुआ। एक हाथ में तमंचा और एक में कौड़ी लेके खेलते थे, सरकार।

“हमारे वालिद बतलाया करते थे, और कुछ तो सरकार, हमने भी देखा है कि ग़दर के बाद अंग्रेज़ी सल्तनत तोपों के ज़ोर से कायम तो हो गयी, मगर ज़म न सकी। यहां बाँकों का राज था; अच्छे-अच्छे रईसों के पलस्तर उखाड़ डालते थे। बाँका कहलाना शान की बात

समझी जाती थी, हुजूर। वे लोग बात की आन भी निबाहते थे हुजूर। जिसका निमक खाते थे उसका अदा भी करते थे। ननकऊ, सनकऊ, तनकऊ तीन भाई थे, हुजूर—कायस्थ, बड़े बेढब। हाजी बेगम के यहां कुड़की आयी तो उन्हींने तीनों को दरवाजे पर बिठा दिया। लोट गये कुड़की वाले। बड़े जुल्म करते थे हुजूर। उस वक्त में लड़कों का खूबसूरत होना गुनाह था। आये-दिन खून-खराबे होते थे शहर में। उस्ताद सुभान खां, बुद्धू खां, ज्वाले-मस्त उस्ताद, शिद्दी गुलाम अली—हाकिम इनके नाम से घबराते थे ग़रीबपरवर ! वह तो कहिये कि एक अंग्रेज़ कमिश्नर आया, हुजूर-आली। उन्हींने चाल चली। उन्हींने ऐलान करवाया कि हुकूमत लखनऊ के बाँकों के करतब देखना चाहती है। इनाम और सनदें बांटी जायंगी। सबके सब जमा हुए हुजूर, और वहीं घेर लिये गये। तबसे शहर में अमन कायम हुआ है, अल्ला आपको जीता रखे !”

ग़दर का आंखों देखा हाल सुनानेवाले जईफ़ भी उस वक्त मौजूद थे। आलमबाग़ की लड़ाई, सिकन्दरबाग़, दिलकुशा, शाहनज़फ़, कदम-रसूल, बेगमकोठी और सआदतगंज के मोर्चों का हाल; राजा बालकिशन, मौलवी अहमदशाह, बिदेही हनुमान, बेगम हज़रतमहल और उनकी ज़नानी फ़ौज की बहादुरी के किस्से; और शहर के फ़त्ले-आम का आंखों देखा हाल सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। फ़िस्से जो उस छोटी उम्र में सुने थे—काश, आज उसी तरह याद रहते तो ग़दर की कुछ ज़िन्दा तस्वीरें पेश कर सकता।

हमारे मुहल्ले में छोटी कालीजी के पास एक बूढ़े लाला रहा करते थे। सौ के करीब उनकी उम्र थी। घर में कोई नहीं था; घर खण्डहर हो रहा था। सामने वाला बैठका और वह दालान जिसमें किरसोई करते थे, उसे छोड़कर घर की हर कोठरी, दालान और छत मिट्टी की पुरानी गुड़गुड़ियों से अटी पड़ी थीं। सुबह सात बजे

बासी गुड़गुड़ी पीकर आधा फ़र्लांग दूर बड़ी कालीजी के बाज़ार से नई गुड़गुड़ी लाने के लिये अपने घर से चल देते थे; ओर दस ग्यारह बजे से पहले कुम्हार की दूकान तक पहुँच नहीं पाते थे। क़दम-क़दम पर बच्चे, बूढ़े, जवान, सब उन्हें टोकते कि 'लाला, चौक चलोगे?' ओर लाला वहीं पर रुककर कहनेवाले को, साथ ही अंग्रेज़ों की मां-बहन और सात पुश्त को गालियां सुनाने लग जाते थे। रास्ते भर एक मिनट के लिये भी गालियों का तांता नहीं टूटने पाता था।

ग़दर के बाद से लाला ने चौक का बाज़ार मही देखा था, इस डर से कि कहीं वह भी न बदल गया हो। ग़दर में अंग्रेज़ों ने उनके घर में घुसकर, उनको और उनके छड़के को खम्भों से बाँधकर उन्हीं की आँखों के सामने घर की बहु-बेटियों को बेइज्जत किया था। बाद में बाप-बेटों को गोली मारकर, सामान लूटकर चले गये। बहु ने अपने पति के लिये साधा गया निशाना झेलकर जान दी। पति फिर भी न छोड़ा गया; दूसरी गोली ने उसकी भी जान ले ली। बड़ी लड़की ने कुएं में कूदकर जान दी; छोटी का पता नहीं क्या हुआ। लाला बदनसीबी से ज़हमी होकर भी बच गये।

उस ज़माने के शरीफ़ज़ादों की तरह गो मुझे भी बरसों तक अकेले घर से बाहर निकलने का मौक़ा नहीं मिला; ग़लियों-पार्कों में खेलने वाले हमउम्र लड़कों को अपने घर से ही हसरत भरी नज़रों से देखकर रह जाता, फिर भी समय की छाप मुझ पर ज़रूर पड़ी। बहुत सी कहानियाँ और बहुत सी पहेलियाँ मेरे अकेलेपन की खिलौना बनकर ज़िन्दगी में समा गयीं। इसीलिये जब उम्र पाकर आज़ादी हासिल की तो संगी-साथियों में दोनों तरह के लोगों को चुन लिया।

नसीरुद्दीन हैदर, वाजिदअली शाह, शन्नम, बड़ी बी और बाँकों के शहर में, ग़लियाँ लिखी हुई दीवारों के मुहल्ले से निकलकर दूर-दूर

एक फैली हुई हरियाली की तरह ही अदब की बड़ी दुनिया में भी लखनऊ की खूबियों को पहचाना। मीर तक़ीमीर, इंशा, नासिग्र, आतिश, प्रनीस, दबीर, मीर हसन, दयाशंकर नसीम, मिर्जा ज़ौक, सरशार, वकबस्त, और आरजू के लखनऊ की सैर की; वेनी प्रवीन और विशाल के साहित्य की कच्ची कड़ियों को मज़बूत बनानेवाले शिवनाथ शर्मा, पुरंदर, मिश्रबंधु, रूपनारायण पांडेय और महाकवि निराला की अटूट लगन से नया जोश लेकर राम विलास शर्मा के साथ आगे बढ़ा। दूसरी तरफ़ कुछ ऐसे साथी भी मिले जो जज्बात के फूलों की पंखुरियां नोच-नोच कर उन्हें हवा में तितलियों की तरह उड़ाते चलते थे।

मेरी नई जवानी के साथियों में ऐसे ही एक सिनरसीदा खां साहब भी थे जिनकी सुरमगीं आँखों में पुराना लखनऊ लहराया करता था। खां साहब ने गो कभी किसी उस्ताद से नाच नहीं सीखा था, मगर जब बैठकर भाव बतलाते थे तो अच्छी-अच्छी नाचनेवालियां भी पानी-पानी हो जाती थीं। फ़रमाया करते थे : “यहाँ वालों में बस एक ही ऐब है—नज़र का ऐब। इसीलिए लखनऊ बदनाम है। मगर क्या ऐब है, बन्दानवाज़ ! बक़ौल शायर के :

“खुदा आबाद रखे लखनऊ को, फिर ग़नीमत है—

नज़र कोई न कोई अच्छी सूरत आ ही जाती है।”

एक लफ़्ज़ ‘लखनऊ’ में ये तमाम तसवीरें सिमटकर सदा मेरे साथ रहती हैं। आदमी अपने माहौल से जुदा होकर कुछ भी नहीं। वह जिस जगह रहता है वहाँ की आबो-हवा, कुदरत के नज़ारे, वहाँ का इतिहास, रीति-रिवाज़, रहन-सहन—सब कुछ जाने-अनजाने तौर पर उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह उससे अपने को अलग करके रह ही नहीं सकता।

तब क्या अपनी खूबियों और ख़ामियों के साथ जिस हद तक मेरा विकास हुआ है, वही आग़िरी सीमा है ? लखनऊ जैसा है, वैसा ही

रहेगा ? पहली शंका जितनी ही निराश करनेवाली थी, दूसरी उतनी ही आशावान् साबित हुई। मोह का मारा आदमी अक्सर अपने बारे में साफ़ नहीं सोच पाता, दूसरे की मिसाल के आइने में खुद को देखकर असलियत को पहचानना उसके लिये आसान होता है। जब लखनऊ के विकास को लेकर सोचने लगा तो महसूस किया, लखनऊ बदला है। मेरे देखते ही देखते लखनऊ बहुत बदला है; उसने तरक्की की है। जिन गलियों में कभी सूरज की रोशनी नहीं पहुँची, वहीं अब उर्दू-हिन्दी के अखबार पहुँचने लगे हैं। लोग अपने और दुनिया के गहरे नाते को नई नज़र से देखने लगे हैं। लखनऊ नवाबों से पहले मंडी के रूप में अपनी अहमियत को अब भूल चुका है; नवाबी ज़माने का रंगीन नगर भी मंहगाई के बमों की मार खाकर खंडहर हो चुका है; नया लखनऊ राजनीतिक चेतना लेकर आगे बढ़ा है : यू० पी० की राजधानी होने के नाते ही उसने नई अहमियत, नई जिन्दगी पायी है।

यह सही है कि पुरानी परम्पराएं हर सतह की जिन्दगी पर गहरा असर डालती हैं। महाजनी सभ्यता की मिठास, मिलनसारी, दुनियादारी के ब्यौहारों की कुशलता और चतुराई अवध की सामन्ती सभ्यता के संस्कारों के साथ समान भाव से शहर की तहजीब व तमदुन पर गहरा असर डालती है। विशाल मैदान, अवध की बड़ी ही उपजाऊ धरती यहाँ के लोग-लुगाइयों को सहज मस्ती से भरा मन देती हैं। मस्ती, बेफ़िक्री, कल्पनाशीलता यहाँ का आम स्वभाव है। इसके साथ ठाकुरशाही, खुदारी और अक्खड़पन एक तरफ़ और दूसरी तरफ़ बनियापन की कायरता यहाँ की आम जनता में घुलमिलकर अनेक रूपों में झलकती है। ये दोनों रंग एक होकर कहीं झूठ, श्रेष्ठीगोरी, लफ़्ज़ों की लड़ाई, बेशर्म और निहायत ही टुच्ची जिन्दगी के नमूने पेश करते हैं; और कहीं शराक़त, आनवान, दरियादिली, निडर तबियत और बुलन्दज़वाली बख़्शते हैं।

मुग़ल साम्राज्य की शक्तियों के बिखरने पर, पतन के ज़माने में

लखनऊ क़स्बे से शहर बना था। क़स्बा भी ऐसा जो बड़ी पुरानी मंडी होने की वजह से बेशुमार दौलत का धनी था। नवाबों ने लखनऊ के, और लखनऊ ने नवाबों के चलन में कहीं समानता पायी; कहीं दोनों ने एक दूसरे पर असर डाला। एक नई लखनवी सभ्यता ढली। इसमें जहाँ कई तरह के फ़न और हुनर चमके, अवध के आला दिमाग़ का पता चला; वहाँ साथ ही साथ कनकौव्वेबाज़ी, क़वूतरबाज़ी, चडूबाज़ी, रंडीबाज़ी वग़ैरह तरह-तरह की बाज़ियों पर इंसान के दिमाग़ की रचनात्मक शक्तियों की बाज़ी लगा दी गयी, उनका बलिदान कर दिया गया।

हाँ, एक बात जो ख़ासतौर पर वाजिदअली शाह के ज़माने में बड़े मार्कों की हुई, वह यह थी कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियां मिलकर शहर को नई चेतना दे गयीं। होली, दीवाली, मुहर्रम समान रूप से नगर के त्यौहार बने। पस्ती में उरुज की यह मिसाल—हिन्दू-मुस्लिम-एकता—इस शहर की अनूठी खूबी है। मस्ती, दरियादिली, एकता और कला के प्रेम से इस शहर में इंसानियत की देवी का सिंगार हुआ है। इंसानियत का यही रूप इस शहर की उन्नतशील आत्मा है। यही उसके विकास की शक्ति है।

मन को लगा कि यही स्वभाव अपने असली रूप में मेरे भी विकास की आत्मा हो सकता है—होगा—है। दिमाग़ की गुत्थी सुलझने के आसार नज़र आये। आदतें स्वभाव के सहारे अमरबेल-सी चढ़ती हैं; और उसकी शक्ति लेकर खुद ही फूलने-फलने लगती हैं—खुद स्वभाव बन जाती हैं। मगर यह नक़ली स्वभाव फ़ौरन ही अपनी असलियत की थाह पा जाता है, जब कि ज़माने की क़द्रे बदलती हैं, शहर और समाज बदलता है, इंसान बदलता है। गलियों के दायरे में रहकर मेरी ज़िन्दगी कुछ और थी, मेरे ख़याल कुछ और थे। ज्यों-ज्यों बाहर की दुनिया देखता गया, नये-नये प्रांतों और नगरों की संस्कृतियों से जान-पहचान बढ़ती गयी, संस्कृति की अनेकता और एकता का गहरा सम्बन्ध समझ में आता गया। मेरे विचार बदले, आदतें बदलीं, ज़िन्दगी बदल गयी।

यह सब होते हुए भी मैं एक जगह कृतई न बदल पाया। मेरा मनोरंजन और मेरे सिद्धान्त दो अलग-अलग जगहों से रस पाते रहे। इंसान की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक बराबरी को मानकर भी मैं उस पर अमल कहाँ कर पाता हूँ। अपनी सुख-सुविधाओं के लिए दूसरों की आर्थिक दासता को कुबूल करता, और दूसरों से करवाता हूँ। ये दो विरोधी बातें जब आपस में टकराती हैं, तो मैं चिड़-चिड़ा उठता हूँ। समझौते की भावना इसी चिड़चिड़ाहट को ठण्डा करने के लिए आती है। और समझौते के माने ये हैं कि जहाँ हो वहीं खड़े रहो। इस बन्धन में रस कहाँ, और रस बगैर आनंद कहाँ, जीवन कहाँ ?

मैं और मेरा शहर बहुत बदल कर भी, बहुत तरक्की कर लेने के बाद भी, इसी बन्धन में जकड़ा हुआ है। संस्कृति के अनेक अंगों को कमाल की हद तक कलात्मक बारीकियों से सजाकर भी हम उसका इस्तेमाल उन चंद लोगों को खुश करने के लिए करते हैं जिन्होंने अपनी दौलत के असर से समाज को बाँध रखा है। हमारी कलाएं सिर्फ व्यक्ति को खुश करने में ही अपनी तमाम खूबियों को निछावर कर देती हैं। और जो कलाकार सिर्फ अपनी कला को ही रिझाता है, उसे समाज से रोटी-कपड़ा मिलना दूभर हो जाता है। इस महाजनी-सामंती सभ्यता के संस्कार अपनी खूबियों को वैसे ही लील जाते हैं, जैसे नागिन अपने बच्चों को। कसरत, कुश्ती का शौक बाँकान बन जाता है; नृत्य-संगीत, शिल्प, साहित्य, चित्रकला—सब रईस की विलासिता के ज़रखरीद गुलाम बनकर पूरे समाजी जीवन की कद्रों पर गहरा असर डालते हैं।

मगर इन सबको बदलना होगा। क्या मैं इन्हें नहीं बदल सकता ? क्या मैं अपनी कमजोरियों के ऊपर नहीं उठ सकता ?

“I can. I can.” मैं अंग्रेजी में बड़बड़ा उठा। मेरा निश्चय विदेशी भाषा में ढलता है। इससे खुद अपने आप पर ही जाहिर हो रहा

है कि मेरा निश्चय अपना नहीं—दिल का नहीं—सिर्फ़ दिमाग़ का है, विचारों का है। उफ़ रे इंसान की मजसूरी ! उफ़ रे मेरी नज़र का ऐब !

इसी नज़र के ऐब ने, जिसे मैंने कभी बड़े शाक़ से दिल के काबुक में बटेर की तरह पाला था, आज मौलाना के सामने लाजवाब कर दिया। मन की बात मन ही में घुमड़कर रह गयी। यह नज़र का ऐब अब महज़ एक हविस की तरह पलता है और मेरे मन से पूजा पाने-वाली हज़रतमहल और लक्ष्मीबाई की मूर्ति को खंडित कर उनकी जगह शबनम और बड़ी बी पर तरस खाने के बहाने अपनी प्यास को बढ़ावा दिया करता है।

रात करवटों में ही बीती।

(२)

सुबह पाँच बजे टैक्सीवाले ने रोज़ की तरह आकर दस्तक दी। उन दिनों फ़िल्म की शूटिंग न होने के सबब से रोज़ ही टैक्सी पर कोल्हापुर के आसपास के दृश्य देखने निकल जाता था। एक बार अलसाया, मगर फिर चल पड़ा।

सड़क और पहाड़ियाँ शीनी फुहारों के धुंधलके से भरी हुई थीं। ठण्डी मजेदार हवा रात की कोरी आँखों को लोरियों सी छू रही थी। टैक्सी की तेज़ रफ़्तार की गूँज कानों में भरने लगी। सिर की झनझनाती नसों को आराम मिला, ठंडक पड़ी। झपकी आ गयी।

मोटर का हार्न बजा; मेरी नींद खुल गयी। इतनी सी देर में ही बड़ा सुख मिल गया; मन में ताज़गी आ गयी। आँख खुलते ही मैं सीधा टिककर बैठ गया। सामने, एक पहाड़ी नाले पर बना हुआ एक छोटा सा पुल था। पुल की ऊँचाई तक बढ़े हुए पेड़ों के सघन कुंज। सड़क की ऊँची सतह पर, और नीचे घाटियों में खेत और छोर तक पैली

हुई हरियाली; झोपड़ियों से निकलता हुआ धुआं फुहारों से टक्कर लेकर ऊपर उठ रहा था।

मोटर का हार्न फिर बजा। दो बैलगाड़ियाँ खड़-खड़ करती छोटी सी सड़क को बड़ी ज़ोरों में घेरे चली आ रही थीं। मोटर के हार्न ने उन्हें बतलाया कि अभी स्वराज नहीं हुआ। गाड़ीवान ने हड़बड़ा कर 'टिङ्ग-टिङ्ग, हिला-हिला' की। घंटियां बड़ी मस्ती के साथ टुन-टुनाकर ढ़ैलों में झूमती-झूलती हुई मेरे कानों के पास से गुज़र गयीं। और गाड़ियों के निकलते ही टैक्सी कोल्हापुर के पास से होकर बहनेवाली पंचगंगा नदी के पुल पर आ गयी। पंचगंगा को देखकर मुझे अपने यहाँ की गोमती की याद आयी; मुझे बड़ी खुशी हुई। बरसात में नदी का बहाव तेज़ था।

गोमती से लखनऊ, और लखनऊ से रात की बात—याद की कड़ियां जुड़ीं। दिमाग़ फिर मन की चिन्ता समेटने लगा।

बुझी हुई चौकोर कंदील को हाथ में लिये हुए एक आदमी और उससे एक दम ही सटकर एक औरत चली जा रही थी। मुझे अपने बच्चों की याद आ गयी। मैं मुड़कर उस जोड़े को देखने लगा। सड़क पर छाया हुआ अबरकी बारिश का धुंधलका और पुल के नीचे से पंचगंगा का एक कोना झलक रहा था—इस वैक-ग्राउण्ड में उस जोड़े की आधी सिलुएट सरीखी वह छवि मुझे बड़ी ही अच्छी लगी। बरबस अपनी पत्नी की याद आ ही गयी। शर्म से आंखें यों झप गयीं जैसे वह मेरे पास ही बैठी हों। नज़रें दूसरी तरफ़ देखने लगीं। सड़क के बाईं ओर दो पेड़ों का सहारा पाकर फैलती हुई अमरबेल को देखा। दोनों पेड़ों पर बुरी तरह छाकर वह बीच में झूले की पटरी की तरह लटक रही थी। उन दरख़्तों के पीछे एक झोपड़ी, उसके सामने एक बैलगाड़ी रखी हुई, वहीं मुर्गों का एक जोड़ा पास-पास चुग रहा था।

अपने गुनाह से बचने के लिये दिमाग़ उपन्यास और कहानियों की कल्पना में बहने लगा। मैं ने राहत महसूस की, और उसे बढ़ने

दिया। कल्पनायें और विचार मोटर की रफ्तार के साथ ही स्पीड पकड़ने लगे।

खेत के किनारे एक दो-ढाई साल का बच्चा नंग-धड़ंग नाच रहा था। उसकी मस्ती ने रोम-रोम में आनंद की लहरें उठा दीं। तरह-तरह की तसवीरें तेज़ी से मन में झलकने लगीं। सोचने लगा, किसी फ़िल्म कहानी का हीरो पिकनिक पार्टी में ऐसी झीनी फुहारों से खुश-नुमा मौसम में खड़ा होकर नाच रहा है। सब उसकी मस्ती पर हँस रहे हैं, हीरोइन भी हँस-हँसकर रीझ रही है। फिर खयाल आया, नहीं, ऐसी मस्ती का इस्तेमाल किसी ड्रामाई घटना के साथ हो। मान लो, हीरोइन मर गयी है, हीरो श्मशान में नाच रहा है। या मान लो कोई ऐसी सिचुएशन हो जैसे....जैसे....जैसे रोम जल रहा है, और नीरो खड़ा बीन बजा रहा है। शहर के जलने का सीन बड़ा ज़बर्दस्त बनेगा, पर हीरो बजाय बीन बजाने के अगर नाचे तो अच्छा होगा। कल्पनायें टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में होती हुई न जाने कहाँ की कहाँ पहुँच गयीं। हर तस्वीर सजती, मन को थोड़ी देर के लिये लुभाती। फिर उससे जी ऊब जाता, मन नई तस्वीर खोजता। तस्वीरों में से पात्र की मस्ती और बेफ़िक्रान गायब हो गया, सिर्फ़ नृत्य का ही भाव रहा। नृत्य भी हो सकता है.....“नटनम अडिनाऽऽर....”मन में दक्षिणी स्वर और ऑरकस्ट्रा गूँज उठा। फिर सोचा, नहीं, नटराज के बजाय कथक नाच हो। बड़ी महफ़िल में हो। उं-हुं, अकेले हीरो ही बंठा है—मैं बैठा हूँ। लखनऊ में हूँ। सिकन्दर नाच रही है :

हटो छेड़ो न कन्हार्ई।

काहे को रार मचाई ॥

पकड़ो न सारी मोरी, हटो-चलो, जाओ....

गेहूँय रंग की बड़ी-बड़ी आंखोंवाली, कमानी-दार भवे, पतले होंठ, लम्बी-नुकीली नाक, पतली कमर जैसी बाक़ई कम देखने में आती

, बड़ी सुडौल जिस्मवाली—मैं उसे सर सिकन्दर कहकर पुकारता था । गर शरीर से वह जितनी ही सुन्दर थी, दिमाग से उतनी ही कुन्द । नाच च्छा जानती थी, पर उसमें जान नहीं डाल पाती थी । उसके क़ाबिले में बट्टे-मुनीर....

नाम ध्यान में आते ही रस आ गया । गोल चेहरा चेचकरू होते ए भी हसीन लगती थी, छोटे-छोटे कत्थे से रंगे दांत, आगे के दो तों में सोने की क़ीलें चमकती थीं । ठोड़ी पर देहाती किस्म का फूल दा हुआ, गाठ-गठिली सी, लम्बी चोटी वाली । उसमें अदब की रंगी-यत थी, ग़ालिब पर जी जान से फ़िदा.... ओफ़ ! कैसी बुरी मौत !यी बेचारी ने ! सिक़लिस से सारा बदन सड़ गया था, ओंठ और क का हिस्सा तक जल गया था । हे भगवान !

पुरानी याद से रोम रोम सिहर उठा । मन बेहद गिर गया । गहरा व गया । फिर झुंझलाहट पैदा हुई, कहां से कहां सोच गया । सारी स्ती ग़ायब हो गयी । वह रस जो खेल में नाचते हुए बच्चे से पाया , अब मेरा होकर ज़हर बन गया ?

मैं थक गया । बेदम हो गया ।

फिर बट्टे-मुनीर की आग़िरी हालत की तस्वीर के साथ मौलाना ने बात याद आयी : “जब तक आप ऐसे करमफ़र्मा रहेंगे..” मगर ह कौन सा करम है जो मैं या मेरे ही जैसे खुदगज़र रंगीनमिज़ाज माज के ऊपर करते हैं ? यह कौन सा ऐसा रस है जिसके पीछे एक हर के कल्चर की सारी शक्तियां लगा दी जाती हैं ? कुटनियां, गुन्डे, ठेहदे, दलाल मेरे और मेरे ही जैसे लोगों के रस की परवर्गिश करने लिये न जाने कहाँ-कहाँ से औरतों, लड़कियों को भगा कर लाते हैं । नके ऊपर बला के ज़ोरो-जुल्म करते हैं; दिन भर मज़दूरनी की रह उनसे काम-काज करवाते हैं, हमें रिझाने की तालीम देते हैं और त में....कभी-कभी तो एक रात ग्यारह-ग्यारह आदमी....!

बद्रे-मुनीर का ऐसा ही हाल हुआ। जब बीमार पड़ी तो उसके तन की कमाई खानेवाला राक्षस दल उसे छोड़कर चला गया। मैं महसूस करने लगा कि इस पेशे को बढ़ावा देनेवाला मैं भी जाने-अनजाने तौर पर उसकी दर्दनाक मौत का जिम्मेवार हूँ। ओढ़नी पर आशिक होनेवाला लखनऊ बद्रे-मुनीर का हत्यारा है ?

इस नज़र से अपनी बुराई पहले कभी नहीं देखी थी। अपनी ही नज़रों में मैं मामूली गुनहगार नहीं, बल्कि हत्यारा बन गया था। मेरा सारा पढ़ना--लिखना, सोचना, मेरा आदर्श, फ़लसफ़ा सब बेकार था। मैं झूठा साबित हुआ।

बरसों बाद मेरा संगदिल पिघलकर पानी-पानी हो गया।

गाड़ी ग़ैबी पीरघाट पहुँच चुकी थी। मोटर से उतरकर ऊँची पहाड़ियों के साये में मैं खड़ा हो गया। कुदरत की हर शै मुझपर फटकार बतला रही थी। पीर की मज़ार पर मैं ने रो-रोकर क्रसम खायी : “अब नहीं ! अब नहीं !!”

रोज़मर्राह

शाम के ६ बजे डाक्टर जम्फर किसी दफ्तर के बड़े बाबू की तरह छड़ी हिलाते हुए घर तशरीफ़ लाये । घरवाली ने तुरन्त उनकी आव-भगत की । चारपाई पर बैठने के पाँच मिनट बाद ही एलमुनियम के गिलास में चाय आ गयी, सुबह की बासी रोटी का आधा हिस्सा भी नाश्ते के लिए मिला । बच्चे उनके घर आते ही अदब से खामोश हो गये । डा० जम्फर आज कई बरस के बाद अपने घर में मिस्टर गिरधरगोपाल बनकर प्रतिष्ठा से बैठे । आज बरसों की बेकारी के बाद नौकरी का पहला दिन दफ्तर में बिताकर वे घर लौटे थे । उनकी पत्नी-बच्चे सब उन्हें आदर की दृष्टि से देख रहे थे ।

मिस्टर गिरधरगोपाल उर्फ़ डाक्टर जम्फर अपने सौभाग्य को सराहते हुए मन ही मन यह सोच रहे थे कि अगर किसी दिन नौकरी के इस स्वांग का भंडाफोड़ हो गया तो उनकी घरवाली उन्हें कच्चा ही चबा जायगी । डा० जम्फर ने अपने दोस्त डा० मखनलाल एच० एम० बी०, एच० एम० डी०, बी० एम० डी० (कैलिफोर्निया, कलकत्ता, कोयम्बतूर) के साथ-साथ लाटरी का टिकट खरीदने का निश्चय किया था । उसी के लिए घर में झूठ बोले, कहा : “अगर पाँच रुपये सरकारी फार्म भरने के लिए होते तो सवा सौ रुपये की नौकरी कल ही मिल जाती ।” पत्नी ने इनकी बातों का विश्वास कर आग्विरी जेवर वेंचकर रुपये दे दिये । उसी बहाने से यह नौकरी का बहाना भी हुआ । रोज़ घर में शान से

सुनाते कि छोटे साहब इतने दिनों में ही उनसे बेहद प्रसन्न हो गये हैं, कहते हैं, “बाबू गिरधरगोपाल, आपके-जैसी ड्राफ्टिंग तो बड़े-बड़े एम० ए० और बी० ए० भी नहीं कर पाते।” इस प्रकार की बातों से वे घरवाली का हौसला बढाते रहे।

मगर होतव्यता होकर ही रही, बकरा कै दिन अपनी जान की खैर मनाता। सवा महीने के लिए उनकी जन्मकुण्डली में कोई शुभग्रह उदय हो गया था, जिसकी बदौलत उन्हें वह सम्मान मिल गया जो घर-घर में कमाऊ मर्द को सदा प्राप्त होता है। मगर एक महीना बीत जाने पर जब तनखाह का दिन आया तो गिरधर बाबू ने बहाना बनाया कि बड़े साहब दौरे पर गये हैं, तीन-चार दिन में आ जायेंगे तब ‘पे शीट’ तैयार होगी। तीन-चार दिन बाद फिर घर में तनखाह का तकाज़ा हुआ, तब डा० जम्फर ने बतलाया कि बड़े साहब दिल्ली के दौरे में गये थे, वहाँ से उन्हें कालेपानी की नयी बस्ती का दौरा करने के लिए भेज दिया गया है।

“अरे कालेपानी जायें, चाहे फांसी चढ़ें, मगर बाबू लोगों की तनखाह तो दे जाते।” गिरधर की घरवाली गरजी। बेचारी ने तनखाह आने की आशा में अपने बचे-खुचे कान के बुन्दे और सोने की चूड़ी खुशी-खुशी बेंचकर महीने भर सबका राशन चलाया था, मगर अब तो तली झड़ गयी थी। कल कैसे बीतेगा, यह भी समझ में नहीं आता था। तनखाह का तकाज़ा तीव्र हो गया था। डा० जम्फर रोज़ नया लतीफ़ा सुना देते और हस्बमामूल साढ़े नौ-बजे दफ्तर के बाबुओं की तरह तैयार हो घर से चलकर डा० मक्खनलाल एच० एम० बी०, एच० एम० डी०, बी० एम० डी० (कैलिफोर्निया, कलकत्ता, कोयम्बतूर,) के मतब में आकर बैठ जाते।

डा० मक्खनलाल का भी यही हाल है। गो दुनिया में मर्ज और मरीज़ों की कमी नहीं हुई मगर डा० मक्खनलाल के हिस्से में निराशा

ही आती थी। डा० मक्खनलाल और डा० जम्फर दोनों मिलकर अध्यात्म-चिन्ता में दिन बिताया करते थे। बेकारी दूर करने के लिए उपाय सोचे जाते, डा० मक्खनलाल रोज अपना फर्निचर ही बदला करते जिससे कि 'शो' अच्छा हो जाय, मगर 'शो' न बन सका। साइनबोर्ड से उनकी डिगरियाँ रंग की पपड़ी उतर जाने के कारण ग़ायब हो गयी थीं। आते-जाते जब उस पर नज़र पड़ती, तभी आह भरते। इतने पैसे कभी न आ सके कि साइनबोर्ड नया बनवा लेते।

और डा० जम्फर तो जन्म के बेकार हैं। दो बार नौकरियाँ पायीं भी, मगर अपने अकड़फूँ मिज़ाज की वजह से महीने-दो-महीने से ज्यादा वे चला न पाये। उनका नाम वैसे तो बाबू गिरधरगोपाल है, मगर स्कूली ज़माने से ही वे न जाने किस तरह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। डा० जम्फर स्कूल में कई पीढ़ियों के क्लास-फेलो रह चुके हैं। हर दर्जे में दो-तीन साल रुककर पढ़ाई पुरस्ता करने का उन्हें शौक रहा है। पढ़ने में कमज़ोर थे, इसीलिए राबर्ट ब्लेक और सेक्सटन ब्लेक की किताबें पढ़ने का शौक तेज़ हो गया था। ठमके कद के, लैली सियाहक़ाम के सगे भाई डा० जम्फर, गो कसरती नहीं थे, मगर चाल और कैंडा पहलवानी ही था। उनका यह ख़याल था कि वे स्कूल के नामी सरगनाओं में से एक थे। उनका यह भी ख़याल था कि राबर्ट ब्लेक की मदद से उनकी अंग्रेज़ी खालिस अंग्रेज़ों जैसी हो गयी थी। स्कूल के मास्टर क्या हेडमास्टर तक उनके मुक़ाबिले में अंग्रेज़ी नहीं बोल सकते थे...बहरहाल स्कूल में उनकी उपस्थिति से, वर्ज़ा तीन से लेकर दर्ज़ा दस तक के लड़कों, मास्टर्स, चपरासियों तक के लिए, दिन भर बेरायटी प्रोग्राम चला करता था। किसी घंटे में ये मुर्गा बने क्लास रूम के दरवाज़ों के पास कोने में बैठे नज़र आते, किसी में नीचेवाली बेंच पर झंडा ऐसे खड़े हुए। इनको सारा ज़माना डा० जम्फर के नाम से चिढ़ाता था और ये अंग्रेज़ी में नौ-नौ बांस उछला करते थे।

डा० जम्फर के पिता पर लड़की की शादी का कर्ज था सो ये तीन हजार में एक बेटी के बाप के हाथ बँच दिये गये ।

डाक्टर जम्फर का ख्याल है कि उनकी घरवाली अभागी है और घरवाली का जो ख्याल है वह आये दिन पास पड़ोसवालों पर प्रकट होता रहता है । डाक्टर अगर अकड़ में बीस चढ़ते हैं तो डाक्टरनी छब्बीस होकर बरसती हैं ।

एक डाक्टर मखनलाल का सहारा है । वो भी उनके जैसे ही नसीब के मारे हैं । रोज-रोज फर्निचर पलटते रहने की आदत से राह चलते मुहल्लेवालों में उनका भी नया नामकरण हो गया है । डाक्टर जम्फर के दोस्त डाक्टर फर्निचर-पलट के नाम से मशहूर हो गये हैं । दोनों ही जमाने से तंग हैं मगर जीने से मजबूर हैं ।

डाक्टर मखनलाल का कंपाउंडर ओज से करीब छह महीने पहिले उनका स्टेथेसकोप और बहुत सी दवायें चुराकर और यों अपनी तनखाह वसूल कर चला गया था । साइनबोर्ड से डिगरियाँ घिस गयी थीं । डाक्टर मखनलाल बगैर हथियार के सिपाही बने दिन-रात यही रोया करते थे : “क्या करें जनाब, किस्मत का खेल है, बतलाइये स्टेथेसकोप के बिना और दवाओं के बिना कोई डाक्टर कैसे प्रैक्टिस कर सकता है । अब साइनबोर्ड पर डिगरियाँ भी नहीं रहीं, फिर पबलिक कैसे मेरी योग्यता समझ पायेगी ? कागज़ में लिखकर चिपकाता हूँ तो मुहल्लेवाले लड़के ऐसे शैतान हैं कि रोज़ फाड़ डालते हैं । अनाप-शाना लिखकर मेरी ‘प्रेस्टिज’ बिगाड़ते हैं ।”

एक दिन जब घर से तनखाह न पानेवाले बाबू की तरह शान फ़ायम रखने की लाख कोशिश के बावजूद मुँह लटकाये डाक्टर जम्फर गली-दुकानवालों की फ़र्तियाँ सुनते, अंग्रेजी में कभी-कभी बमकते हुए, डाक्टर फर्निचर-पलट के मतब पहुँचे तो दोनों मित्रों में दुख-मुख होने लगा ।

डाक्टर फर्निचर-पलट ने जब अपनी आम शिकायतों का शतचंडी पाठ दुहरा लिया तो डाक्टर जम्फर भी गहरी ठंडी सांस निकालकर बोले : “ हाँ यार, कभी-कभी तो जी में आता है कि लगा दूँ आग कोहेतूर में, फिर खयाल आता है मूसा बेवतन हो जायगा ।”

दोनों डाक्टरों ने साथ-साथ यह शेर पढ़ा... गोया रोज़मर्राह की बेकारी देवी की पूजा का एक और कार्यक्रम पूरा हुआ ।

डाक्टर जम्फर माथे पर बल डालकर बोले : “ कुछ नहीं दिस वलर्ड इज् आल माया, एंड मिथ्या, फ़ाल्स, बोगस । सो बेटर लीव दि वलर्ड डाक्टर । आओ हम तुम वैराग ले लें । अब पैतालीस-छियालीस की उमर आयी । वी कैन बिकम सेन्ट ।”

डाक्टर फर्निचर-पलट ने रोज़ की तरह इस प्रश्न का जवाब दिया : “हाँ दोस्त अब तो मेरे दिल में भी यही लगन है । बस, मैंने तो अपनी तक्रदीर को अब छै महीने की मोहलत और दे दी है कि चेत, वरना मक्खनलाल बैराग लेता है ।”

फिर लाट्री की चर्चा चली, सपने बंधे : “अरे कभी हमारी बेरी में भी फल लगेंगे ।” इस कहावत के साथ एक दैनिक नियम और सधा ।

इस तरह बातों में हमेशा की तरह दिन बीता, रात आई । दोनों डाक्टर साथ-साथ चले डाक्टर फर्निचर-पलट पतलून में हाथ डालकर और डाक्टर जम्फर छड़ी हिलाते हुए ।

घर के दरवाज़े पर पहुँचते ही डाक्टर जम्फर अपनी तमाम अकड़ बटोरने लगे । अकड़ कर आवाज़ दी : “कुं डी खोलो ”

दरवाज़ा खुलते ही घरवाली बरस पड़ी । “क्यों जी, तुम झूठ बोलते हो । तुमने पाँच रुपये टगने के लिए इतना बड़ा जाल रचा ? मुझे सब मालूम हो गया है, तुम डाक्टर फर्निचर-पलट के यहाँ दिन भर बैठे रहते हो.....।”

“यू आर रिगरेटिंग मी सन्नो की अम्मा । यू काल माई फ्रेंड इन बोगस नेम्स । मैं आज ही बैराग ले लूंगा ।”

खूब गर्मागर्मी हुई । मुहल्ले भर ने जाना । लड़ाइ यहाँ तक हुई कि डाक्टर जम्फर घर से निकल आये । घरवाली ने तेहे में फटाफट दरवाज़े बंद कर लिये ।

कहीं और जगह न पाकर डाक्टर जम्फर ने डाक्टर मक्खनलाल के मतब के चबूतरे पर एक रात का कड़कड़ाता सा सव्यास लिया ।

ओर अब तो यह शर्म भी रोज़मर्राह बन चुकी है ।

नाश और निर्माण

सात-पच्चीस ! मीनी ने सामने दीवाल-घड़ी पर नजर डाली फिर अपनी रिस्टवाच पर। मीनी की घड़ी एक मिनट स्लो थी। उसे ठीक करती हुई वह आगे बढ़ी।

सुबह की सुनहरी धूप सान्ताक्रुञ्ज के हवाई स्टेशन के प्रतीक्षागृह में ताक झांक करती हुई मुसाफिरो से खेल रही थी। चारों ओर चहल-पहल; नए-नए सूट, गुजराती डगले, मदरासी चुंगियां, काली सफेद टोपियां, बुशशर्ट, रंग-बिरंगी साड़ियां, फाक-गाउन, छोटे-बड़े पर्स, रंग-बिरंगे सैंडल, लिपस्टिक से पुते हुए होठ, धूप के चश्मे, सिगरेटों के टिन, धुयों की लकरीरें, सभ्यता के बंधनों में बंधे हुए कहकहे; अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगाली, हिन्दुस्तानी स्वरों का सम्मिलित प्रवाह; बैठे हुए, खड़े हुए, टहलते हुए, यात्रियों की वह छोटी-सी-भीड़ मीनी के मन से उलझनों का गठीला जाल बनकर लिपट गई। उसका दम घुट रहा था, उसे अच्छा नहीं लग रहा था। सामने मैदान में हवाई इंजनों का शोर कानों के लिए तकलीफदेह होने पर भी कुछ खास बुरा नहीं लगा। लाउडस्पीकर पर बार बार 'योर एटेंशन प्लीज' का नारा, हवाई जहाजों के आने जाने के सम्बन्ध में नई-नई सूचनाएँ, शोर के तौर पर बुरी लगकर भी मीनी का ध्यान अपनी ओर खींच लेती थी। उसे ज्ञाना था। वह दिल्ली जा रही थी।

सात-इक्तीस ! उसे आये हुए ६ मिनट हुए थे। घड़ी न होती तो लगता कि जैसे उसे एयरोड्रोम पर आए हुए ६ युग बीत गए—या शायद

इससे भी ज्यादा। मीनी की वेदना को घड़ी सिर्फ ६ मिनट में नहीं बाँध सकती। हरगिज नहीं। उसकी वेदना बहुत बड़ी है—काल की परिधि से बहुत बड़ी—असीम, अनन्त। काल और स्थल की व्यापकता मीनी की जिन्दगी से महीना भर पहले ही मिट चुकी थी। तब से दिन और रातें भी गुज़री हैं। हर पल, हर लम्हा बढ़ा है, बढ़ता ही जाता है, लेकिन उसके लिए वक़्त जैसे बीत ही नहीं रहा है। तरल क्षण जम कर पत्थर हो गया है। चहल-पहल से भरे हुए अखबार के दफ़्तर से लेकर उसके सूने फ्लैट तक बम्बई का कांव-कांव भरा हर कोना, काम की गूँज से भरा हुआ हर गोशा मीनी के लिए अपनी व्यापकता को नष्ट कर चुका है। जैसे सातों समुद्रों का पानी प्रलय की तरह उमड़ कर धरती पर छा गया हो, सिर्फ़ उतनी-सी जमीन को छोड़ कर जिस पर कि मीनी के दो पांव टिके हैं। इन तीस दिनों में जैसे वह सोई नहीं, जागी नहीं, कहीं गई-आई नहीं, जैसे उसने कुछ नहीं किया, कुछ भी महसूस नहीं किया। मीनी का जैसे सब कुछ मिट चुका है। वह स्वयं नष्ट हो चुकी है। काल और स्थल से परे अपनी अदम्य वेदना को लेकर वह कही विद्यमान है, एक सांस के रूप में, एक कराह के रूप में, आह बन कर।

एक गहरी आह-सी टंडी सांस बेसाहता मन की घुटन को तोड़ कर बाहर निकल गई, और उसने नए सिर से महसूस किया कि वह एयरोड्रोम में है। वह सान्ताक्रुज़ के एयरोड्रोम में है। उसके चारों ओर रंगीन चहल-पहल है, हवाई इंजनों का शोर है, “योर एटेंशन प्लीज” का नारा है। मीनी ने महसूस किया कि उसके मन की सतह से ऊपर यह चहल-पहल भरी दुनिया एक भार है। भूचाल से डिमी हुई नींव पर आराइशों से भरे हुए महल की तरह डरावनी है।

और उसने महसूस किया कि वह थक गई है। उसे बैठना चाहिए। लेकिन वह कहां बैठे। हर जगह कोई न कोई बैठा है। वह किसी के

पास नहीं बैठना चाहती। किसी का किसी किस्म का साथ नहीं चाहती। वह सबसे दूर रहना चाहती है। मीनी अपनी जगह पर से चली गई, जैसे वह हो दूर चली गई हो, दूर जा रही हो। फिर उसने अपने आपको बुकस्टाल के सामने खड़ा पाया। उसके सामने किताबें थी। किताबें और अखबार—उसकी जैसी पत्रकार और लेखिका के जीवन का सर्वस्व। हां, अब फिर से सर्वस्व ही।

मीनी ने धोखा खाया था। वह धोखा जो जवानी में जीवन का सबसे बड़ा धोखा मालूम होता है। जिस धोखे से बदला लेने की भावना वियोग का रूप धारणकर खुद अपने आपको ही सताने लगती है। और मीनी यह भी नहीं कह सकती कि यह धोखा उसे उसके साथी ने दिया है। ज्यादा से ज्यादा वह यही कह सकती है कि चार आँखों ने मिलकर दो दिलों को धोखा दिया। प्रेम की भावना ने समझ को धोखा दिया। उसे सोचना चाहिए था कि एक विवाहित पुरुष से प्रेम करना गलत है, असम्भव है। उसे सोचना चाहिये था कि गिरीश के सूने फ्लैट में एक दिन 'देस' से मिसेज गिरीश आ ही जायेंगी। तब उसे महसूस करना होगा कि गिरीश पर उसका कोई अधिकार नहीं।***और यही वह आज भी नहीं सोच सकती, आज भी नहीं मान सकती। हरगिज नहीं। कभी नहीं।

किताबों में खोई हुई निगाहों ने एक नाम पढ़ लिया, "बाडीज एंड सोल्स"। मीनी ने नाम का स्पर्श पाकर किताब उठा ली, इस उपन्यास का विषय क्या है? दूर एक और शीर्षक देखा 'लास्ट होरा-इजन'—वह पढ़ चुकी है, पुरानी किताब है। नजरें किताबों की सतह को छूती हुई निकल गई। वह फिर खो गई। इन तीस दिनों से दुनिया की हर एक चीज उसके मन की सतह को छू कर भाग जाती थी। मीनी को कोई भी अपना नहीं बनाता, न दीन, न दुनिया***

उमाशंकर जोशी और सुन्दरम् के काव्य संग्रह सामने रखे थे। गुजराती साहित्य के यह दो अनुपम रत्न मीनी को सदा से प्रेरणा देते

रहे हैं। ये उसके अपने कवि थे। परन्तु अपने से मीनी रूठ गई है। इसीलिए आज अपनी भाषा के कवियों को मीनी चाह कर भी अनदेखा कर गई। फिर उपन्यासों को देखने लगी।

“दिस साइड आफ इनोर्सेस” टेलर-काडवेल का अनूठा उपन्यास—मीनी ने गिरीश के साथ जब अहमदाबाद की पहली हवाई यात्रा की थी तब गिरीश ने उसे यह भेंट किया था। मीनी ने किताब उठाकर एक बार हाथों से उसका स्पर्श किया। सुखद स्मृतियाँ नशे की तरह उस पर छा गईं। और उस सुख से मिले हुए दुःख की तात्कालिक अनुभूति भी मीनी को हुई। मीनी ने किताब रख दी। उसे दूसरों की कहानियाँ नहीं चाहिए। वह उपन्यास नहीं पढ़ेगी। उसे दूसरे की कहानियों से नफरत है। उसकी अपनी जीवन कहानी भूरी रह गयी है। वह कहानियाँ नहीं पढ़ेगी। वह काव्य चाहती है। मरुस्थल की प्यास से थकी हुई मीनी रस की एक बूंद चाहती है। कोने में रखी हुई किताबों पर हिन्दी के अक्षरों से उसकी नजरें उलझी, और वह बरबस ही हिन्दी की किताबों की ओर झुक गई। हिन्दी से उसका अपनापन था, हिन्दी गिरीश की मातृभाषा थी। किताबों के टाइटिलों पर उसकी दृष्टि उचटती-सी दौड़ने लगी। एक किताब के टाइटिल ने उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। उसने किताब उठा ली “नाश और निर्माण”। उसने कवि का नाम देखा, गिरिजाकुमार माथुर। कवि के नाम के पहले अक्षरों में वह खो गई। एक क्षण के लिए उसे लगा कि किताब पर कवि का नाम लिखा है, गिरीशकुमार शर्मा—नहीं माथुर, नहीं गिरिजाकुमार माथुर। कवि का नाम अनायास ही स्पष्ट हो गया। और वह अपने मन के छलावे पर आप ही मुस्करा पड़ी। प्रेम पागल होता है, उसने सोचा.....

“योर एटेंशन प्लीज” —दिल्ली जाने के लिए हवाई जहाज तैयार था। यात्रियों को सूचना दी जा रही थी। मीनी ने तुरन्त ही किताब खरीद ली। वह चल पड़ी, फिर लौटी ओर उसने “दिस साइड आफ

इनोसेंस' को भी खरीद लिया । अपने छलावे से वह आप बहल गई थी । और भी अपने को बहलाना चाहती थी । कवि के नाम से उसकी चिरपरिचित ध्वनि उलझी हुई थी, पुस्तक के नाम से उसका अपना रूप उलझा हुआ था । इतनी मीठी उलझन को बटोरकर मीनी को अपनी पहली स्मृति-भेंट भी खरीद कर अपने को बहलाना अच्छा लगा । दिल का लगाव, दिमागी एसोसिएशन्स, सब कुछ सहेज कर हवाई जहाज की ओर चली ।

धूप में चमकता हुआ डाकोटा जसे कल्पना के रहस्यलोक में उसका प्रवेश करा रहा था । कम्पनी का एक अफसर हाथ में यात्रियों की लिस्ट लिए हुए खड़ा था । उसका भी नाम आया मिस मृणालिनी देसाई । अफसर ने नाम चेक किया । मीनी हवाई जहाज की ओर बढ़ गई ।

२

कुदरत और इंसान की सजावट से भरी हुई थाली-सी धरती से मीनी की नजर का फासला दूर—और दूर होता जा रहा था । एक क्षण के लिए मीनी को यह अनुभव हुआ जैसे देह छोड़कर उसके प्राण ऊपर उठ रहे हों । उसकी इच्छा हुई, फिर ऐसा महसूस भी करने लगी कि यह हवाई जहाज मीनी को लेकर नष्ट हो जायगा । मीनी फिर लौट कर जीते जी धरती के सम्पर्क में न आयेगी । उसके मानसिक घटाटोप के पुरजे उड़ जायेंगे ।

अपने नष्ट हो जाने की यह कल्पना अमोनिया की तीखी गन्ध की तरह मीनी की गिरी हुई 'स्परिट' को ताजा कर गई । लेकिन उसके साथ ही साथ उसका मानसिक भार उतना ही तेजी से उसे गिराता चला गया । मीनी का चेहरा मौत की तरह सफेद हो गया ।

'चक्कर आ रहे हैं'—एयर होस्टेस की आवाज उसके कानों को जीवन का नया-सा परिचय दे गई । झकोले के साथ उसने अपने आप पर नया काबू पाया, एयर होस्टेस की तरफ देखा । उसके रंगे हुए

लाल-लाल होठों पर मुस्कुराहट की रेखा खिंची हुई थी, उसकी आँखों में करुणा थी, पेशेवर करुणा । फिर भी उस करुणा और मुस्कान का स्पर्श मीनी को शीतल कर गया । मीनी ने मुस्कराकर उत्तर दिया—“नहीं” ।

“पहली बार सफ़र कर रही हैं ?” एयर होस्टेस ने पूछा ।

“नो”, लेकिन इम छोटे से उत्तर से मीनी को संतोष नहीं हुआ, उसे लगा कि उसके मन का रहस्य दूसरे पर प्रकट हुआ जा रहा है, उसे उत्तर देना चाहिए । उसे अपनी बातों से मन का रहस्य ढँक लेना चाहिये । वह कहने लगी—“मेरी यह छठी यात्रा है । मुझे पहली यात्रा के वक्त भी कोई तकलीफ नहीं हुई थी । बल्कि सच तो यह है कि हवाई सफर मुझे ताजा बना देता है । रादर आई विश कि मेरा दफ़्तर भी हवाई जहाज पर ही होता, या मैं भी तुम्हारी तरह एयर होस्टेस होती ।”

कहते-कहते मीनी थक गई । उसने एक सास ली । एयर होस्टेस हँसी, बोली—“टु प्लीज वन एंड आल (एक को और सबको खुश करना)—मेरा काम मुश्किल है । मिस मिस……”

“देसाई ।” मीनी ने थकी हुई आवाज के साथ एयर होस्टेस को अपना नाम जानने में मदद दी । वह चाहती थी कि अब ज्यादा बात न करे । अपने मन में खो जाने के लिए भी उसके पास होसला न था । मन के लोक में मृत्यु थी; बाहर थकान । असमंजस से स्तब्ध हो मीनी जड़ हो गई । और वह जड़ता अपने आपको मिटाने के लिए ही गोद में रखी हुई किताबों में खेलने लगी ।

एयर होस्टेस ने उसके अनमनेपन को तत्क्षण पहचानते दृष्टे बात बदलकर कहा—“मेरा खयाल है कि मिस देसाई को एक कप गर्म-गर्म काफी चाहिए । क्या मैं आप के लिये लाऊँ, मिस देसाई ?”

“ओह थैंक्स, मैं आपकी इस मेहरबानी का स्वागत करूँगी ।” मीनी

ने न्यायोचित नम्रता का दान कर अपनी हवाई मेजमान को टाल दिया, और “नाश और निर्माण” उठा ली।

इनर टाइटिल, वक्तव्य, सूची, पहली कविता.....“कौन थकान हरे जीवन की।” पहली कविता में ही उसका ध्यान लगा। वह पढ़ने लगी। शब्द अपने आर ही संगीत के स्वर में गूँजने लगे। शब्दों ने उसकी मानसिक थकान को अपने संगीत का स्पर्श दिया। अनजाने में उसकी थकान कवि की थकान का सम्बल पाने लगी। काव्य बोझ भरी थकान में भी सौन्दर्य देख लेता है, संगीत भर देता है।

मुशिक्षिता, पत्रकार और लेखिका मीनी को साहित्य का स्पर्श भासानी से बहला गया। उसकी अपनी व्यथा कवि के स्वर से बँध कर मौन में गा उठी।

रात हुई पंछी घर आये,
पथ के सारे स्वर सकुचाये,
म्लान दिया बाती की बेला.....
थके प्रवासी की आँखों में
आँसू आ-आ कर कुम्हलाये।
कहीं बहुत ही दूर उनीदी
झाँझ बज रही है पूजन की।
कौन थकान हरे.....

चेतना अजीब तरीके से बातों को बाँधती है.....पूजन की झाँझवाली पंक्ति से गिरीश और प्रेम की अव्यक्त पवित्रता मन में गूँज उठी और वह गूँज जब स्पष्ट हुई तो हवाई इजन की गूँज बन गई। फिर मीनी सोचने लगी कि चेतना अजीब तरीके से बातों की कड़ियों को बांधती है।

बौद्धिक रूप से मीनी को अपनी स्मृतियों का सहारा लेने का बहाना मिल गया था। उसे अपने खोयेपन में अपनी उलझन और उसके

स्थायित्व में एक रस मिलता है। घुट जाने पर वह जरूर चाहती है कि बाहर के किसी काम में, किसी दृश्य में, किसी बात में अपना पूरा ध्यान, पूरी शक्ति केन्द्रित कर दे। परन्तु सचमुच वह ऐसा नहीं करना चाहती, ऐसा नहीं कर सकती। जो प्रत्यक्ष जीवन में साथी बनकर न चल सका, जो भाव अभाव बनकर छलावा दे गया, वह वेदना के रूप में उसके रोम-रोम में समाया है। ज़िद के साथ वह गिरीश की स्मृति को अपने प्राणों के पाश में जकड़े रखना चाहती है। ईर्ष्या के साथ वह अपनी गर्म आहों में गिरीश की सांसों की सुरभि के घुले-मिले होने की कल्पना करती है। ईर्ष्या के साथ वह गिरीश के स्पर्श को अभिन्न मानकर उसे अपने आप में अनुभव करती है। गिरीश उसका है, गिरीश पर मीनी का अधिकार है। अवश्य अधिकार है। अवश्य.....अवश्य.....

“आपकी काफी मिस देसाई।” एयर होस्टेस की मुस्कुराहट के साथ प्याला सामने आया। मीनी को शिष्टाचार की फर्ज अदायगी में भी कुछ देर लगी। आँसुओं से भारी रुंधी हुई आवाज कंपन के सहारे ऊपर उठी—“आपकी बड़ी कृपा है।”

मीनी ने प्याला ले लिया और आँखों की गीली कोरों को छिपाने के लिए उसने फौरन ही खिड़की की ओर मुंह फेर लिया। रुई से बादलों के ऊपर उसका हवाई जहाज जा रहा था। मीनी की ईर्ष्या मिश्रित वेदना ने ठीक ऐसे ही उसकी स्मृतियों को भी ढक रक्खा था। उसे ईर्ष्या थी गिरीश की पत्नी के प्रति, ओर गिरीश के प्रति उसके मन में अधिकार का हठ था। लेकिन दिमाग की स्क्रीन पर न तो गिरीश की ही तस्वीर थी, ओर न उसकी पत्नी की। उसका लगाव उस वक्त सिर्फ अपनी मौजूदा हालत से था। वह हारी हुई थी, चिढ़ी हुई थी, अपनी ही आँच से वह आप तप रही थी। दरअसल उसे तपने का होश था, और किसी बात का नहीं। गिरीश की पत्नी, वह खुद, ओर गिरीश का ध्यान तर्क के तोर पर अव्यक्त ध्वनि के तौर पर विद्यमान था। सब कुछ अस्पष्ट था—स्पष्ट थी केवल उसकी हार, चिढ़, तपन।

मीनी खिड़की ओर देखती हुई काफी पी रही थी। काफी उसे अच्छी लगी, मगर काफी पीना—ब्रियाशीलता उसे भारी लग रही थी। उसने काफी मंगवाई ही बयों। खैर, अब आ गई है तो अच्छी बात है... काफी उसे अच्छी ही लग रही है। खास तौर से इतने ऊँचे, से एक बन्द उड़ती हुई दुनिया में काफी, वेफर्स, टाफीज़, मैसूरी सुपारी की पुड़िया, इन तमाम चीजों में एक अजीब लज्जत पैदा हो जाती है। उसको काफी में अब रस आ गया था। आँखों में पानी की झलझलाहट अब खुशक हो चुकी थी।

मीनी का मन, हलके बहाव में उतर आया, नजरें अपनी सतह पर आ गई। मन का सुकून भुलावा देकर मीनी को नार्मल जिन्दगी की सतह पर चन्द मिनटों के लिये खेलने को छोड़ गया। मीनी ने अपने आस-पास देखा। अब तक इक्कीस यात्रियों के डाकोटा में जैसे वह अकेली सफर कर रही थी। उसने इस होश और ताजगी के साथ हम-सफर अनजानों को देखा। डबल सीटों वाली कतार पर, अपनी गर्दन के धुर मोड़ से उसकी निगाह जिन लोगों पर पड़ी, उनमें एक पारसी जोड़े ने उसका ध्यान अपनी ओर खींच लिया। उन्हें देखते ही मन-विनोद से खिल उठा। 'शंकरा वीकली' के साहब और मेम साहब वाले स्थायी फीचर की आकृतियाँ सामने सजीव बैठी थी। लेडी साहिबा की रामराज शाही तन्दुरुस्ती को देखते हुए हवाई जहाज की कुर्सी का घरा तंग था। मियाँ पारसी का शरीर कलजुगी था, सूखी लकड़ी-सा अकड़ा हुआ। तितली कट खिचड़ी मूँछें, लम्बा नाक, बड़े मोटे शीशों वाली सोने की कमानी का चदमा, जिसे वह बार-बार कभी नाक पर, कभी कानों पर, कभी दोनों सिरों पर, हाथ से ठीक करते रहते थे। उनकी उंगलियाँ अपने नकसोरों को भी बार बार घिसती थी। मीनी ने गौर किया कि यह उनकी आदत थी। उनके हाथ निचले न बैठते थे। कभी नकसोरों, कभी कान, कभी चदमे पर घूमते ही रहे, और उनकी भवें भी जल्दी उचकती थीं। बाकी सारा शरीर सिलोलाइट के सिपाही

सा ज्यों का त्यों बैठा था। लेडी साहिबा अपने साहब को, जान पड़ता था, मंत्र पर मंत्र देती चली जाती थीं। उनके चेहरे पर हिंकारत की उतनी ही मोटी-मोटी लकीरें थीं जितनी कि वह खुद। मीनी ने फिर गौर किया कि साहब के जिस्म की तरह ती लेडी के मुख का यह भाव स्थायी था। बाकी सारा शरीर हरकत, या कहिए, हरकतों से भरा हुआ था। दोनों हाथ इंजन के एक्सिलरेटर की तरह उनके भाव के स्थायित्व को गतिशील बनाने के लिये बार-बार उठते थे। मियां पर एक लताड़-झाड़ चुकने के बाद दूसरी लताड़ के शुरू होने के बीच में जब वो रुकती थी, हाथ तोंद से चिपकते थे, और ताजी सांस के साथ ही हाथ की मुद्राएँ भी मटक उठतीं थीं। मैदा की ढीली गठरी से थुलथुले तोंद पर हाथों का पड़ना या बार-बार करवट बदलते हुए उसका जुम्बिश लेना मीनी के कार्टूनों भरे दिमाग से टकरा कर उसके मन को गुदगुदाने लगा। लेडी का यह संगीत और नृत्य अपने पति के प्रति जिस तन्मयता से चल रहा था, उसे देख कर मीनी का मन विनोद से खिल उठा।

मीनी ने अपनी जानिब भी देखा। उस कतार में एक गुजराती सेठ अपने रोजगार के कागजों को पढ़ रहे थे। नजर उपेक्षा और फुर्ती के साथ उनकी ओर से खिंच आई। अपने ठीक पीछे वाली सीट पर सहसा नजर पड़ची, एक दोयम नम्बर के मशहूर राजनीतिक नेता इतमी-नान के साथ खुरांटे भर रहे थे। उनका मुंह खुला हुआ था। देखकर मीनी की तबियत बाग-बाग हो गई। नेता जी की सांस खुरांटे की मस्ती के साथ बगैर किसी किस्म के रिजर्वेशन (बन्धन) से मुक्त थी। मुंह गोया जेलखाने का खुला फाटक था जो उसकी आजादी में खलल डालने की कोशिश से बेलाग हो चुका था। पत्रकार मृणालिनी देसाई को अपने पास कैमरा न होने की मजबूरी मजाक की तेजी के साथ महसूस हुई। काश कि यह नेता महाशय अखबारों में अपनी इस कुद-रती फिजां को छाया हुआ देख पाते, तो अक्ल कम-अज़-कम, अगर

इल्यूजन्स की गिरफ्त से सदा के लिए छूट न जाती तो भी मिनट भर के लिये झेंपकर सिकुड़ जरूर ही जाती। मीनी ने साथ ही साथ महसूस किया कि इस नेता कौम के प्रति उसके इल्यूजन्स, लोगों के इल्यूजन्स, कितनी तेजी के साथ खत्म हो चुके हैं। विनोद की तह में प्रेम और श्रद्धा की निश्छलता नहीं, बल्कि तोखे व्यंग की तीव्र गतिमान भावना है। नींद ने असलियत को बेहिसाब कर नेता जी के चेहरे पर उसे पेश कर दिया है। वह उनकी मूर्खता की पवित्रता पर मुग्ध हो गई। 'शंकर' ने कई बार उनके कार्टून बनाए थे। अक्सर उसे पसन्द भी आये थे मगर इस सजीव कार्टून को बेचारी पेंसिल की रेखाएं कहा तक पाती? मीनी ने अपनी खिलखिलाकर हंस पड़ने की ध्वनि को अपने आप में अनुभव किया। सभ्यता के तकाजे से मन की वह खिलखिलाहट होठों पर खुली मुस्कान तक ही पनप कर रह गई। फिर भी मजा आ गया।

और तमाम चेहरे सफरी तौर पर ही उसके ध्यान को छूते रहे। उसके सहयात्रियों में ज्यादातर जवान थे, कुछ अघेड़ थे, औरतें, बहुत कम थी। सूट ज्यादा चमकते थे। हवाई जहाज भर में एक अरिस्टोक्रेसी की हवा थी। पाइलट के लेफ्टनेंट और एयर होस्टेस इधर उधर आते-जाते दिखाई पड़ जाते थे। एयर होस्टेस कभी इससे मुस्कुरा कर बात कर रही है, कभी उससे मुस्कुरा रही है। कितने काम-काज से भरी हुई कलात्मक अदा है उसकी। मीनी का ड्याल एयर होस्टेस से बंधने लगा। "टु प्लीज वन एंड ऑल" —उसके वाक्य पर मीनी का ध्यान गया। और उसकी सहानुभूति कल्पना के दौर में पहुंच गई। वह कितने रस और जवानी के मद के साथ हर यात्री से —खास तौर पर हर जवान यात्री से, खास तौर पर बिना जोड़े के जवान यात्रियों से अपनी कम्पनी की प्रतिनिधि बन कर पेशेवर खातिरदारी में जुट जाती है। लगता है जैसे इसके जीवन का हर क्षण चंचल जवानी से भरा-भरा नाफुर्सत है। दुःख को मन में झंकने को भी मौका न मिलता होगा। मगर इस विचार के साथ ही साथ मीनी को एयर होस्टेस से जीवन का हर क्षण

दुख से भरा हुआ अपने दिल में महसूस हुआ। उसके कानों में एयर होस्टेस की वह बात लगातार गूजने लगी, “टु प्लीज वन एंड ऑल, मेरा काम मुश्किल है मिस देसाई।”

मीनी का दिमाग इस सहानुभूति से टकरा कर झुँझलाया। क्यों वह इस दर्द भरी दूकान पर खुशी का चमकता हुआ साइनबोर्ड सजाए हुए घूम रही है। हर घड़ी की यह बनी हुई जिन्दगी क्या उसे अखरती न होगी? कभी उसका दमन घुट जाता होगा? और वह तमाम बनावट, अपने औरतपन का, अपनी खूबसूरती और जवानी का, अपनी प्रतिभा का यह ओछा इस्तेमाल उसे अपने दिल में विद्रोह न पैदा करा देता होगा? मगर....शब्द “मगर” उसकी इस तमाम प्रश्न धारा के अंदर निहित था। मगर यह सब उसे पेट के लिए करना पड़ता है। पेट बहुतसी झूठी कलाओं को भी कितना सजीव बना देता है। यह पूंजी-शाही कल्चर, यह नम्रता, खातिरदारी कितनी छिछली और ऊपरी है। यह कल्चर सभी शहरी समाज का है। पढ़े-लिखे समाज का है। और इस कल्चर को समाज में एक अच्छी और स्वस्थ निशानी माना जाता है। मगर क्या भावना का बाजारूपन स्वस्थ है? पेट की दूकानदारी में इन्सान की कुदरती कोमल भावनाओं को इस कदर सजावट का सामान बनाकर रखा जाय? यह कहाँ तक न्याय है? क्या यह प्रकृति के प्रति अन्याय नहीं? और इस अन्याय को अपनी चेतना पर लाद कर ले चलने वाले इन्सान को इस बोझ से झुझलाहट नहीं होती? और उल्टे रास्ते पर चलने से तरह-तरह के कॉम्प्लेक्सेज कल्चर की इस गलत बुनियाद पर पैदा नहीं हो जाते?

मृणालिनी बहुत कुछ सोच गई, सोचती चली गई। दम भर में इतना सब सोच गई। कल्चर का रहस्य किसी हद तक तो शब्दों और वाक्यों में अनूदित होकर चेतना की सतह पर आया, लेकिन विशेष रूप से ध्वनि के रूप में ही समझ के कब्जे में आ गया।

मीनी खुद भी उस कलचर की प्रतीक थी। महीने भर से उसका जी नहीं चाहता कुछ भी करने का, मगर दफ़्तर जाने की वजह से उसे साफ कपड़े पहनने पड़ते, बाल भी बनाने पड़ते, हँसना भी पड़ता, काम की वजह से ही तो सब कुछ करना पड़ता।

और काम हर हालत में करना ही पड़ता है। मीनी ने चाहा कि वह पढ़ी-लिखी लेखिका और पत्रकार न होकर मध्यवर्गीय घर-गिरस्ती की बहू बेटी बन जाय, जिससे वह पेट के लिए धंधा करने से मुक्त हो जाय। मगर यह ख्याल तुरन्त ही कोरे ख्याल के रूप में आ गया। धन्धा तो इस हालत में भी पीटना पड़ता। धन्धा हर इंसान के लिए जरूरी है, क्योंकि उसे काम चाहिए। काम इन्सान का कुदरती अधिकार है।

और वह काम ही नहीं कर पाती। कुछ भी करने को मीनी का जी नहीं चाहता। गिरीश इतने प्यारे बनकर के आए कि अब उसका गम ही प्यार बन गया है। हर दम वह गम अपनी ओर पूरा ध्यान घसीट लेता है। उस गम से दूर रहने का भी जी चाहता है, साथ ही उन्हीं में ही पड़े रहने को भी जी चाहता है।

लेकिन काम के बगैर निस्तार नहीं। काम याद और गम के भंवर से छूट दिला देता है। मीनी को इस वक्त भी काम चाहिये। मन जो बहला था, वह फिर गम के नजदीक पहुँच गया। मीनी ने मन बहलाव के खोये मन से जाग कर फिर अपनी घुटन को देखा। उसे भूलने के लिए काम चाहिए। किताब सामने गोद में खुली रखी है, लेकिन हाथ में काफ़ी का प्याला अभी भी है। उसमें एक घूट ठंडी काफ़ी पड़ी भी है। मीनी ने फौरन तय किया कि उसे पढ़ना चाहिए। वह फौरन ठंडी काफ़ी का घूट उतार गई। उसकी नजर एयर होस्टेस को दूढ़ने लगी। एयर होस्टेस शायद बहुत देर से एंजिन रूम में है। मीनी ने खाली प्याला अपने पैरों के पास रख दिया और किताब उठा ली।

‘मैंने विप के बान सहे थे।’

खुली किताब में कविता की पहली पंक्ति पर दृष्टि पड़ी। कविता पढ़ना भी काम के बजाय गम बनने लगा। उसने 'नाश और निर्माण' बंद कर दी। उसने सोचा कि वह "दिस साइड आफ इनोसेन्स" पढ़ेगी। मगर जिल्द के बाद सादा पेज के खुलते ही गिरीश की लिखावट-पहली यात्रा की पहली भेंट-उसके लिए जहर हो गई। यह किताब तो वह प्रति भी नहीं जिस पर गिरीश के लिखे हुए मधुर शब्द अंकित हों। वह 'दिस साइड आफ इनोसेन्स' भी नहीं पढ़ेगी। वह 'नाश और निर्माण' ही पढ़ेगी। गम गलत करने के लिए उसे कुछ करना चाहिए। उसे पढ़ना चाहिए। उसे एक आलोचक और कविता-प्रेमी की तरह पढ़ना चाहिए। ख्याल से बेलाग होकर पढ़ना चाहिए।

मीनी बेलाग, बेलौस होकर आलोचक की दृष्टि से पढ़ने लगी—मैंने विप के बान सहे थे।

एक प्रहार हुआ सपनों तक,
और दूसरा लघु जीवन पर,
सागर के सब रत्न लुटे,
हैं शेष कूल के काले पत्थर,
एक साथ ही मैंने दुहरे,
जन्म-मरण के दान सहे थे।"

मीनी बेलाग, बेलौस न रह सकी। कविता उसकी वेदनामयी अनुभूति से लिपट गई। मीनी ने चाहा कि वह बेलाग, बेलौस हो जाय। उसने कविता की तारीफ करनी चाही। इस कविता में भी कितनी संगीतमयता है। गिरजाकुमार लिरिकल पोयट हैं।

गिरजाकुमार के लिरिकल पोयट होने की आड़ लेकर मीनी काम करने लगी। कविता पढ़ने लगी। मगर मीनी दरअसल काम नहीं कर पाती थी; कविता नहीं पढ़ पाती थी। अनुभूति काव्य का रस बन गई, और अनुभूति को वह आलोचना कहकर टाल रही थी। कविता पढ़े

बिना उससे रहा भी नहीं जाता । वह पढ़ेगी, मगर काम के लिए पढ़ेगी । वह नोट्स तैयार करेगी । वह किसी गुजराती पत्रिका में हिंदी के इस कविता संग्रह की आलोचना करेगी । उसने कलम खोल लिया और किताब पर अपने रिमार्क लिखने लगी, मार्क लगाने लगी ।

अब न हृदय ही रहा हमारा,
शून्य हुआ है जीवन सारा ।
डूब गया जब आसमान ही,
वहाँ बचेगा एक सितारा ।

पंक्तियों पर मार्क अपने आप ही लग गया, लेकिन रिमार्क उसने न लिखा । वह दूसरी कवितायें पढ़ने लगी । एक के बाद दूसरी पढ़ती ही गई । 'मैंने बहुत छला अपने को, जीवन भर मन में रोना है, यह वही पथ है जहाँ हम मिट गए तुमसे बिछुड़ कर.....'

कविताये पढ़ते-पढ़ते स्मृति फिर वहीं सजीव हो उठी । अनायास ही मीनी को खयाल आया, अब अहमदाबाद आयगा । अहमदाबाद का हवाई स्टेशन आयगा, वेटिंगरूम आयगा वह कुर्सियाँ जिन पर कि इससे पिछली हवाई यात्रा के वक्त वे दिल्ली का सफर करते हुए बैठे थे ! और उन्होंने बिछुड़ने का निश्चय किया था । और गिरीश ने कहा था : इस दुधारी ज़िन्दगी पर मैं तुम्हें कुर्बान नहीं करना चाहता । मीनी मैंने तुम्हें प्यार दिया है । मैंने तुमसे ऐसा प्यार पाया है जो आज मेरी शक्ति बन गया है । इसीलिए मैं तुम्हारी ज़िन्दगी से खेलना नहीं चाहता । इसमें शक नहीं कि तुम मेरी ज़िन्दगी में आ गई, मगर इसमें भी शक नहीं कि हम दोनों एक दूसरे की ज़िन्दगी में अचानक आये, खास तौर से तुम मेरी ज़िन्दगी में इतनी अचानक आई कि अपने छिपे हुए गहरे अभाव का भेद अनायास ही मुझ पर खुल गया । यह भेद खोलने के लिए मैं शायद अभी तैयार न था । मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है । मैं तुमसे

मिलने के पहले तक अपनी पूरी जहनियत के साथ यही समझता रहा कि मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है। मगर अपनी जिन्दगी में तुम्हारे आ जाने से, तुम्हारे प्रति अपने आकर्षण की गहराई से मेरा यह विश्वास डिंग गया। आज मैं अपने मन को वैज्ञानिक दृष्टि से साफ-साफ समझ गया हूँ। लेकिन न्याय दोनों ही पलड़ों पर संतुलित है। भाव और अभाव अब तो दोनों ही भर गए हैं। मैं तुम्हें अपनी पत्नी नहीं बना सकता मीनी, क्योंकि पत्नी के रूप में मेरी कल्पनायें तृप्त हैं, सुखी हैं, शांत हैं। ओर मुझे डर है कि तुम जो अचानक मेरे प्रेम की इतनी जबर्दस्त शक्ति बन गई हो, अगर बराबर मेरे साथ रहोगी तो हमारे अंदर का स्त्री-पुरुष एक दूसरे से अपना भौतिक अधिकार माँगेगा। वह अनैतिकता है। दुनिया उसे अनैतिकता कह कर पुकारती है। मैं पुष्प हूँ, मेरे लिए फिर भी सात खून माफ हो जायेंगे। मगर तुम स्त्री हो मीनी, समाज तुम्हें अनैतिकता का दंड देगा, भले ही तुम कितनी स्वतंत्र हो। नीति सभ्यता का बन्धन है।”

गिरीश ने कितनी ही बड़ी-बड़ी बातें कही थीं। गिरीश ने कितना निजत्व देकर उसे समझाया था, यह सब मीनी को याद आने लगा। मीनी ने फिर उस याद से झकोला खाया। नजर फिर कविता पर पड़ी। मीनी के लिए कोई गति नहीं थी। मीनी को तो कविताएँ पढ़नी ही थी। अहमदाबाद अभी दूर है। और कविता तो कविता है—सौन्दर्य है। और सौन्दर्य तो निरी आलोचना करने की ही चीज़ है। उसका अनुभव करना घोर अनैतिकता है। सभ्यता उसे अनैतिक मानती है।

मीनी के दिल में टीस उठी, फिर आँसू निकल आये। उसने झटपट अपनी कोरें पोंछ लीं, और फिर किताब पढ़ने लगी। वह फिर आलोचक की हैसियत से किताब पढ़ने लगी, और ज़िद के साथ आलोचक ही बनी रही। मीनी ने बहुत सी कविताएँ पढ़ीं। उसे कविताएँ जगह-जगह सचमुच बहुत भाईं। थकी दुपहरी में पीपल पर, टायफायड,

कुतुब के खंडहर, रेडियम की छाया, एसोसियेशन, मशीन का पुर्जा, युग सांझ—मीनी ने 'नाश और निर्माण' की बहुत सी कविताएँ ध्यान से पढ़ी, और बहुत सी उचटती हुई नज़रों से भी। उसे एक बात का विश्वास हो गया था कि गिरजाकुमार उसके मन का कवि है। कम से कम इस मानसिक पृष्ठभूमि में कवि मीनी पर अपने काव्य-आकर्षण का प्रभाव डाल रहा है। कवि में संगीतमयता के साथ-साथ चित्रमयता भी खूब है। वह नये छंदों का प्रयोग करता है, नये प्रतीक गढ़ता है। कवि रोमांटिक धारा में बहता है ज़रूर, मगर उसकी बुद्धि, उसकी अनुभूति उसे रोमानियत के किले में आजन्म कैद की सजा कभी नहीं भोगने देती।

मीनी कवि का विश्लेषण करते-करते खुद अपने बारे में ही साफ होने लगी। कविताएँ पढ़ते हुए रोमानियत के दर्द की मारी मीनी कविता के उस रंग से बचना चाहती थी। ऊपरी तौर पर वह अपने आपको इस तरह डराती थी और बचाती थी भी। मगर इस हकीकत से भी उसका मन इन्कार न कर सका कि रोमानियत के रंग में रंगना, इन कविताओं के सहारे अपने अधूरे सपनों की पूर्ति पाकर उस भाव में रम जाना उसे सुखकर प्रतीत हो रहा था। उसे वियोग की तह में संयोग का सपना मिल रहा था। आशा रोमानियत के सपनों को जीवन दान दे रही थी। और इसी लिए वह इस निश्चय पर पहुँच सकी कि यह अभाव उसके नारी-जीवन का प्राकृतिक अभाव है। यह केवल मात्र शारीरिक अभाव तक ही सीमित नहीं, यद्यपि वहाँ भी उसकी एक सीमा लगती है। गिरीश ने झूठ नहीं कहा था कि अगर हम साथ रहेंगे तो हमारे अन्दर का स्त्री-पुरुष एक दूसरे से अपना भौतिक अधिकार भी माँगेगा।

मीनी को इस तर्कशैली पर गुस्सा आया। वह सोचने लगी, क्या यह ज़रूरी है कि प्रेम के साथ उसके महत्व में शरीर भी साझा

बंटाये ? प्रेम अनंग है, हम एक दूसरे का शारीरिक उपभोग करने की कामना रखे बगैर भी प्रेम कर सकते हैं ।

मीनी इस विचार के साथ अपने में एक दार्शनिक बड़प्पन का अहसान पाने लगी । लेकिन उसने जल्द ही अनुभव किया कि गिरीश से मिलने के लिये उसकी तड़प इस फिलासफी से बड़ी है । वह गिरीश को नहीं भूल सकती । गिरीश से मिले बगैर उसे मुख नहीं मिल सकता । और नीति, अनिति, ये बड़ी-बड़ी दीवारें, सब उलझनों..... एक सीधी-सादी बात के लिए—क्यों—पहाड़ क्यों खड़े कर दिये जायं ?

मीनी का बस चलता तो उठकर खड़ी हो जाती, और चहलकदमी करते हुए इस मन के घुमड़ते हुए निश्चय को दृढ़ निश्चय का रूप दे देती । मगर वह अपने कमरे में न थी, सभ्य दुनिया के बीच में थी । ऐसे अनायास उठ पड़ने से लोग अचकचा कर उसे देखने लगेंगे । ओह ! यह सभ्यता भी क्या बुरी चीज है । हर जगह बंधन ! इतने बंधन !

मीनी को सभ्यता पर क्रोध आया । उस सभ्यता को जो खुद झूठे आधार पर खड़ी है, दूकानदारी के आदर्श पर खड़ी है—उसे अपने ही द्वारा उत्पन्न कॉम्प्लेक्स (उलझनों) पर नीति-अनीति के लेबिल लगाने का क्या अधिकार है ! जब जीवन ही समझ में नहीं आता तो उसका सही मूल्यांकन किस तरह से किया जा सकता है ?

झूठ है इस मूल्यांकन का ढोंग । पहले इस झूठे कल्चर को खत्म करना होगा ।

मगर अराजकता ? मीनी के मन में फौरन ही शंका आई, और साथ ही उसका निराकरण भी । उसी प्रवाह में विचार आया, और निश्चय के साथ आया कि अराजकता खुली राह है, नंद गली नहीं । उसकी गुत्थियाँ अंत में सुलझेंगी, खुलने के लिये आगे बढ़ेंगी और जैसे

जैसे गुत्थियाँ सुलझेंगी वैसे ही जीवन का सही मूल्यांकन करने की चेतना भी आयेगी ।

“कृपा करके अपनी पेटियाँ कसिये ।” एंजिन रूम के सामने यह आदेश रोशन हुआ । मीनी ने देखा कि साबरमती नदी रुपहरी गोटे की पतली किनार की तरह दूर से चमकने लगी थी ।

मुल्लर की महतारी

गोमती से आई, छः जगह से सिली, चार जगह पैबन्द लगी, मैली-कुचैली चदरिया खूँटी पर टाँगी और मुल्लर की महतारी मुहल्ले के सात चूल्हे झाँकने के लिये चल दी । यह उनका नित्य का नेम है ।

“का हुइ रहा है रज्जो की दादी.....? ए—रज्जो की दादी।” मुल्लर की महतारी की आवाज सुनते ही रज्जो की दादी को मानो गड़ा धन मिल गया । ठाकुरों को नहलाकर वे पलकें में रख चुकी थीं और अब हनुमान चालीसा का पाठ करते हुये बजरंगबली को चोला चढ़ा रही थी । उनका चार बरस का पोता अशोक घण्टी से खेलते और अलसेशियन कुत्ता ‘एडम’ नाक पर बैठनेवाली मक्खियों को अपनी वत्तीसी दिखलाते हुए दादी से भोग की चीनी और दो दाने किशमिश पाने की प्रतीक्षा में बैठे थे । “भूत पिचास निकट नहिँ आवैं, महावीर जब नाम सुनावैं” कहते-कहते पाठ छोड़ रज्जो की दादी हरख कर बोली— “अरे आओ-आओ मुल्लर की महतारी । मैं यहाँ बैठी हूँ ।”

एडम ने आहट पाई तो मक्खियों से लड़ना छोड़कर मुल्लर की महतारी पर गुराते हुए बाहर निकला । इस कुत्ते से मुल्लर की महतारी का दम सूखता है । “बहू अपने कुत्ते को सम्हारौ” कहते हुए उन्होंने अपनी धोती का घेर समेट कर पैरों के बीच में रख

लिया जिससे कि छू न जाय और कुत्ते की आँखों से टकटकी बाँधकर खड़ी-खड़ी घूरने लगीं। ठाकुर घर से रज्जो की दादी और ऊपरवाले कमरे से रज्जो की माँ ने प्रायः साथ ही साथ एडम को डाँटा। एडम महाशय चलते-चलते भी शैतानी से बाज न आये, मुल्लर की महतारी के चारों ओर परिक्रमा कर प्रणाम के रूप में फिर एक बार उन पर गुर्रा कर सीढ़ियों पर चढ़ गये। भय के साथ ही साथ मुल्लर की महतारी की आँखों में कालका खेल रही थीं। ठाकुर घर में जाकर बैठते ही बोलीं—“ई का रज्जो की दादी, बँभनन के घर में कुत्ता पाल के नरक मां जैहौ ? भला बताओ ठाकुर-घर में कुत्ता आवे, बैठे, कहाँ की चाल है ? अपना धरम बिगाड़त हौ औ भगवानौ वयार।”

“अब क्या करूँ मुल्लर की महतारी, जो लड़कों का धरम वो मेरा धरम। मेरे ठाकुर जी तो भोले-भाले हैं भैना, सब कुछ माफ कर देते हैं।” रज्जो की दादी ने हनुमान जी को पलके में पधराकर पत्ते से अपने हाथों में लगे सिन्दूर को पोंछते हुये कहा—“अबकी तो तुम भौत दिनों में आई ?”

“अरे हमतो कइयो बार आए। मुल डाक्टर साहेब बैठका माँते कहि देयं अकि अम्मा नाही हैं। हम लौट जाय। हम तौ तुमरे कारन ई घरमां आइत जाइत हैं। हम कहा आज इकात्सी है, लाओ तुमका बताय आई।”

“हां एकादशी तो कल बाबाजी रामायण बांचने आये थे तब बतला गये थे। अरे अशोक, जा बेटा, अपनी माँ से कहकर मुल्लर की महतारी के लिये एक सीधा तो निकलवा दे।”

“पैले हमें पलछाद दो”

अशोक की दादी हँस पड़ीं। मुल्लर की महतारी की ओर देखकर बोली—“रोज परसाद के लालच में भगतराज बने हैं, ऐसा खोट

है ये । ... जा तो राजा भैया, पैले मम्मी से कह आ पीछे परसाद दूंगी ।”

अशोक गया । मुल्लर की महतारी चौकी से चन्दन चर्चित जिल्द वाली गीता उठाकर उलटने-पलटने लगीं । ठाकुरजी महाराज को कपड़ा पहनाते हुए रज्जो-अशोक की दादी ने बात उठाई—“बाबा जी ऐसी बढ़िया रामायण बाँचते हैं कि आनन्द आ जाता है ।”

“उंह, ऊ का बाँचैगा निगोड़ा । हमरे मुल्लर के बप्पा रहे तौन ऐसी बढ़िया रमाइन बाँचत रहे कि साच्छात भगवान के दर्शन होयं । हमका कितनी बार कराये ।”

“अच्छा ? तो तुम्हें राम जी के दर्शन हो चुके हैं मुल्लर की महतारी ?”

“अरे ! कइयो बार ।” मुल्लर की महतारी ने ऐसे इत्मीनान से सिर हिलाकर कहा, मानो रामजी के दर्शन बहुत ही मामूली-सी बात हो ।

“धन्न हो तुम । हमारे जैसे पापी तो जनम-जनम ऐसी अभि-लाखा लै के मर जाते हैं ।” एक-एक ठाकुर जी पर एक-एक फूल चढ़ाते हुए निसास ढील कर रज्जो की दादी ने कहा और फिर गोसाँई जी से विनय भाव उधार लेकर गुनगुनाने लगीं—“कबहुँ अम्ब औसर पाय । मेरी भी सुधि दीजियो विशै चलाय ।”

रज्जो की दादी का चेहरा भक्ति-भाव से भर उठा । उनका स्वर भर आया । मुल्लर की महतारी ने उनका तार तोड़ते हुए धीरे से बात उठाई—“रज्जो की दादी, अपनी पड़ौसिन का हाल कुछ सुन्यौ ।”

रज्जो की दादी का स्वर अभी भक्ति के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ था कि उसमें अचरज भर गया—“नहीं तो भैना । मैंने तो कुछ भी नहीं सुना ।”

“दफ्तर से चार लाख का गबन कर के भागे हैं ?”

“कौन सालिगराम ?”

“और नहीं तौ का । हमरे मुल्लर का झूठमूठ बदनाम कयि दिहिन अकि जुआं खेलत हैं और जाने का का अंट-संट करत हैं । हमरे पुरखन का मंदिर, तौन पोंजा छुड़ाय दिहिन । अरे हमार मुल्लर तौ अइस सूधा सच्चा है कि वहिका जो बुरा कहिहै रामजी वहिके आगे आप अइहैं ।”

नौकर सीधे की थाली लेकर आया और बोला—“माताजी, इनसे कहिये कि अपने मुल्लर को समझा लें । तीन बार मेरी कोठरी से पैसे चुराये हैं ।”

यह सुनना था कि मुल्लर की महतारी भादों की बिजली सी कड़कड़ा उठी । एक साँस में कोसना शुरू कर दिया । रज्जो की दादी ने उन्हें बहुत थाम, नौकर को डाँटा । मुल्लर की महतारी नौकर के जाने के बाद कोसते-कोसते रोई, फिर मुल्लर की प्रशंसा की, फिर ठंडे चित्त से सालिगराम की कथा सुनाने लगी कि किस प्रकार वे एक वेश्या के फेर में पड़े, फिर कैसे रातों-रात दफ्तर की तिजोरी का ताला तोड़ कर अपनी वेश्या के साथ भाग गये । केवल सालिगराम ही नहीं, मुल्लर की महतारी ने सालिगराम की पत्नी, उनकी विधवा बहन, उनकी कालिज में पढ़नेवाली लड़की और बड़े लड़के तक के सम्बन्ध में बड़ी भेद-भरी बात बतलाकर कलजुग का माहात्म्य बखाना, और यह भी सूचना दी कि सालिगराम के घर पर पुलिस का पहरा बैठने वाला है । उनके घर हाज़िरी लगने लगी है ।

रज्जो की दादी यह सब कथा सुनकर सन्न रह गई । मुल्लर की महतारी पूजापाठ से उनका ध्यान उचाट कर दो घंटे बाद उठी । आंगन में आई, रसोई घर में दृष्टि डाली, रज्जो की माँ सर्वेश्वरी रसोई घर के आगे दालान में कुर्सी पर बैठी किरिशिये से रुमाल काढ़ती

हुई नई महाराजिन को दाल में छोंका देने से पहले डाक्टर साहब यानी अपने पति को बिना मिर्च-मसाले की दाल छोटी बटलोई में अलग निकालने का आदेश दे रही थीं। नज़र मिलते ही मुल्लर की महतारी खीसें निपोरती हुई उनकी तरफ बढ़ी—“का हूइ रहा है बहूरानी।” कहते हुए वे दालान के खंभे के पास आकर बैठ गई।

“मुल्लर की महतारी, तुम्हारे लड़के का चालचलन बहुत बिगड़ गया है आज कल। हमारे रामदीन की कोठरी से पैसे चुरा ले जाता है। ये खराब बात है।”

मुल्लर की महतारी के चेहरे पर एक बार तलवार चमकी, फिर खुशामद की म्यान के भीतर छिप गई, दुःखी स्वर में बोली : “तुम बड़ों आदमी हो बहूरानी, कुछौ कहि लेओ, बाकी तुमका ज़रूर न्याय करै का चाही। मुल्लर हमार सरबन पूत है। हम कहिति हयि अकि जित्ता वहि सीधा है वत्तइ सब जने वहिका बदनाम करत फिरत हैं। मैं गरीबिन, मोर मनई नाही रहा, तउ मोरे बचुआ का सब जने बदनामु करत हैं।” रौने में शब्द डूब गए। रज्जो की माँ गहरी नज़र से उनकी तरफ़ देखने लगीं, मुल्लर की महतारी आँसुओं के एक दौर से गुजर कर फिर कहने लगीं। “हमार मुल्लर तौ भोरहे उठि के आपन अंगरेज़ी की किताब और कांपी लैके चला जात है, कि अम्मा सन्नाटा मां जाय के पढव। ओलम टी टी सब पढ़ै लाग है हमार मुल्लर।” कहते-कहते फिर उनका गला भर आया, उन्होंने आँखों को पल्ले से ढँक लिया।

रज्जो की माँ के हृदय में मुल्लर की महतारी के आँसुओं का कोई मूल्य नहीं। वे फटकार कर बोली : “चलो चलो। मेरे सामने ये झूठी तारीफें रहने दो उसकी। मैंने खुद उसको जुआं खेलते देखा है। और जो जुआं खेलता है वह चोर भी है, बदमाश भी है, सब कुछ है। सारी दुनिया जानती है उसे। खबरदार कर देना उसे। अगर फिर

हमारे घर में घुसकर उसने रामदीन की कोई चीज़ चोरी की तो मैं पुलिस में दे दूंगी।”

मुल्लर की महतारी ऊपर से मुह बंद और मन में लाख गालियाँ देती हुई वहाँ से उठ पड़ी। मुल्लर की बुराई करनेवाला, चाहे वह कोई हो, उन्हे फूटी आँखों नहीं सुहाता। और मुहल्ले में ऐसा कोई नहीं जो मुल्लर की शिकायत न करता हो। इसलिए वे मन ही मन सबसे घोर घृणा करती हैं। उन्हें मन ही मन इस बात का दुःख अवश्य है कि मुल्लर का चलन बहुत बिगड़ गया है। खुद उन्हें भी दुःख देता है—मारपीट भी करता है—पर चाहे जो हो अपना पूत सरबन पूत है, उसकी बुराई सुनकर उनके इन्तेपित्त जल जाते हैं। वे घर-घर की बुराई घर-घर में करके अपने घर की निंदा को परनिंदा की ओट में कर लेने के लिए रातदिन बहाने सोचा करती हैं।

रज्जो की दादी का दिया हुआ सीधा लेकर जब घर आई तो उन्होंने मुल्लर को दो तीन मित्रों के साथ सिगरेट पीते और ताश खेलते पाया। बेटे को देखकर महतारी हरख उठी। आज तीन दिन बाद घर में उसकी सूरत दिखलाई दी थी।

मुल्लर की महतारी का घर हनुमान जी के मंदिर के अहाते में सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले बना था। जिन मंशी सदामुख ने यह मंदिर बनवाया, उन्होंने ही पुजारी के रहने के लिए यह घर भी बनवाया था। मुल्लर वंशानुक्रम से इस मंदिर का पुजारी है, परन्तु इधर साल भर से उससे पूजा का अधिकार छीन लिया गया है। मुल्लर की संगति बहुत बिगड़ गई है। मंदिर में लगभग पचास-साठ रुपए प्रति सप्ताह चढ़त की आमदनी होती है। वह सब बुरे कामों में खर्च हो, यह मुहल्ले के पढ़े-लिखे लोगों को वर्दाश्त न हुआ। मंदिर के बाहर चबूतरों पर पड़े सायबान में एक दाढ़ीवाले बाबा जी भी तीन चार वर्ष पहले कहीं से रमते हुए आकर बस गए हैं। वे बड़े निस्पृह, निर्व्यसनी और भजनीक

है। उन्होंने मंदिर के अहाते में अखाड़ा स्थापित किया, युवकों में कसरत, कुश्ती का शौक डाला। बाबा जी दोनों समय कसरत, कुश्ती लड़ते हैं और बाकी समय जोर-जोर से कोई भजन या रामायण की चौपाइयाँ गाया करते हैं। किसी भक्त ने एक गाय बछड़ा दे दिया है, उसी की सेवा करते हैं, दूध पीते हैं, एक वक्त टिक्कड़ सेंक कर भोग लगाते हैं। मुहल्ले ने मीटिंग कर पूजा का भार बाबा जी को सौंप दिया। चढ़त की आमदनी को मंदिर की परम्मत में खर्च करने का निश्चय किया गया। मुल्लर महाशय बहुत फिटफिटायें, परन्तु उनका वश न चला। बाबा जी का खून करने की धमकी दी, परन्तु कोई प्रभाव न पड़ा। मुल्लर की महतारी के बहुत रोने गिड़गिड़ाने पर उनको रोटी पानी के लिए तीस रुपए मासिक तथा भोग में चढ़नेवाली मिठाई और बताशे उनके हिस्से में दिये गये। मुल्लर के लिए यह शर्त लगी कि वह घर में रह तो सकता है, परन्तु उसके कोई विधर्मी दोस्त वहाँ नहीं आ सकते।

इसीलिए मुल्लर की महतारी ने अपने बेटे को विधर्मी मित्रों के साथ देखकर चट से घर के दरवाजे बंद कर लिये। मुल्लर आज तीन दिन बाद घर आया था। उसे देखकर महतारी का चेहरा बार-बार चमक उठा; भय की लड़खड़ाहट झलकी।

कुर्ते की जेब से पर्स निकाल कर मुल्लर ने पांच का नोट अपनी मां के सामने फेंकते हुए हुक्म दिया—“पांच आने का चाय का बंडल, आध सेर दूध—और सक्कर है घर में कि नहीं?”

“बतासा हैं.....”

“आध पाव सक्कर भी लाना और सेर भर जलेबी। समझीं! जल्दी से लाय के चाह बनाओ।”

मुल्लर की महतारी उल्टे पाँव लौट पड़ीं। रज्जो—अशोक के पिता बाबू रेवतीशरण, जो गुरीबों को मुफ्त होमियोपैथिक दवायें बांटने के

कारण डाक्टर साहब कहलाते हैं, आना बैठका बन्द कर अन्दर जा रहे थे, उन्हें देखते ही बोले—“मुल्लर की महतारी, यहाँ आओ ।”

“हम जरूरी काम ते....”

‘बात सुनो’, डाक्टर साहब ने कड़क कर कहा ।

मुल्लर की महतारी बैठके में आयी ।

“तुमने बाबू सालिगराम के बारे में क्या कहा था ?”

“हम तो कुछो नाही कहा ।”

“तुमने अभी माताजी से क्या कहा था ? बाबू सालिगराम कहीं भाग गए हैं ?”

“भाग गए हूँइहैं । जो जइस करिहैं वइस भुगतिहैं । हमें चाह लेवै जाय का है । हमें फुरसत नाही है ।” बड़बड़ाती हुई मुल्लर की महतारी तीर की तरह बाहर चली गई ।

डाक्टर साहब को बात से सतोष नहीं हुआ । वैसे तो यह उनका दृढ विश्वास है कि मुल्लर की महतारी झूठ के सिवा कभी सच बोलती ही नहीं । इसीलिए वे उसका अपने घर में आना-जाना पसन्द नहीं करते थे । पर उनकी आज की बात ने डाक्टर साहब को भी चक्कर में डाल दिया था । सालिगराम उनके निकट पड़ोसी हैं । एक दफ्तर के बड़े बाबू डाक्टर साहब, दूसरे के बाबू सालिगराम । बाबू सालिगराम ने गबन किया है, यह सूचना उन्हें मथे डाल रही थी । बाबू सालिगराम के दरवाजे पर पुलिस कांस्टेबिल को उनका नाम पुकारते हुए उन्होंने कल भी देखा था और आज भी । इसीलिए मुल्लर की महतारी की बात उनके मन में जमती सी अनुभव हो रही थी । बाबू सालिगराम ऊपरी आमदनी कमाने में आलिम-फ़ाजिल हैं ही, इस बार शायद बुरी तरह नीयत डोल गई है ।

अन्दर आकर सर्वेश्वरी से कहा—“अभी मुल्लर की महतारी मिली थी....”

“हाँ तो क्या बोली ?”

“भई, उसकी बात पर तो मुझे विश्वास नहीं होता । सालिगराम ऊपरी आमदनी तो करते हैं... पर.....

“ विश्वास तो मुझे भी नहीं होता, पर उनके यहाँ दो रोज से पुलिसवाला चक्कर तो लगाता है । ऐसे ही भला क्यों आयेगा पुलिसवाला ।”

रज्जो की दादी बोली—“मुल्लर की अम्मा झूठ क्यों कहने लगी । भली है बेचारी । उसे तो रामजी के दरसन भी हो चुके हैं ।”

सर्वेश्वरी और डाक्टर साहब दोनों इस बात पर हँस पड़े । सर्वेश्वरी एक कालेज में अध्यापिका है, डाक्टर साहब दफ्तर जाते हैं । दोनों उस समय तो चले गये, पर यह समस्या उन्हें परेशान ही करती रही ।

दिन में चार आदमियों की रोटी बनाने, चौका-बरतन करने के कारण मुल्लर की महतारी को घर से बाहर निकलने का अवकाश नहीं मिला । तीसरे पहर खाली होकर वे फिर अपनी दिनचर्या पर बाहर निकलीं । डाक्टर ने टोका, सर्वेश्वरी ने फटकारा, इन बातों से उनके पेट में दिन भर साइक्लोन उठता रहा था, सो उसे शान्त करने के लिए चलीं । “रामदेवी की अम्मा, का हड़ रहा है ।” कहते हुए लाला रघूमल की घरवाली को घेरा । उनसे भी सालिगराम के घर की कथा कही, डाक्टर साहब और उनकी पढ़ी-लिखी नौकरी करनेवाली पत्नी के चलित्तर उछाले, रज्जो की दादी को भर पेट खाने को भी नहीं देते, मुल्लर की महतारी के आगे वे बेचारी चौधार आँसू बहा रही थीं, यह सब बतलाया ।

रघूमल की घरवाली के पेट में बात न पची । उन्होंने पड़ोस में चर्चा की । सालिगराम गुबन करके भागे हैं, यह समाचार स्त्रियों

में खलबली मचाने लगा । तीन-चार ओरतें मिलकर सालिगराम के घर गईं । वहाँ सब चैम-चान था । किसी के चेहरे पर चिन्ता की एक रेखा भी नहीं । रामादेवी की अम्मा से रहा न गया, पूछ ही तो लिया—
“अरी मंगो, तेरे घरवाले कहाँ गये हैं ?”

“इलाहाबाद गये हैं सरकारी काम से ।”

“और ये सिपाही तुमरे यहाँ आवाज लगाने क्यों आवे हैं ?”

“पता नहीं बीबी जी, सरकारी काम से आया होगा । क्यों क्या बात है ?”

“नहीं..... कुछ बात नहीं ।”

“किसी ने कुछ खबर फैलाई है क्या ?”

“मैं तो तुम जानो, न कही आऊँ न जाऊँ । मुल्लर की महतारी डाक्टर साहब के घर में कुछ उल्टा-सीधा सुन आई थी । उसी ने मुझसे कहा....कैसे-कैसे लोग हैं भाई, आपस में सच्ची झूठी उड़ा देते हैं ।”

“क्या कही थी मुल्लर की माँ ने । तुन्हें हमारी कसम बीबी जी, तुम्हें बताना ही पड़ेगा ।

सालिगराम की घरवाली सारी कहानी सुनकर आग-बबूला हो गईं । उनकी विधवा ननद भी सर्वेश्वरी के परिवार को कोसने-काटने लगी । ननद-भौजाई तैश में भरी हुई डाक्टर साहब के घर पहुँची । और एकदम से धावा बोल दिया— “जिसके घर में पापा-चार होवे हैगा, वे ही दूसरों को बदनाम करते फिरे हैं।”

बात गरमागर्मी पर आ गई । सर्वेश्वरी और उनकी सास दोनों ही लड़ने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण मात खा गईं । सालिगराम की बहन और पत्नी का तैहा चढ़ता ही गया । घंटों की झक-झक के बाद उन दोनों को शान्त कर सर्वेश्वरी पूरी बात समझा पायीं कि बात मुल्लर की महतारी ने उड़ायी है और वे लोग तो स्वयं परेशान हो रहे थे ।

रातों-रात तार दिया गया। सालिगराम सुबह की गाड़ी से ही घर आये। घर में पहले तो उन्हें यह बतलाया गया कि दो रोज़ से कांस्टेबिल पुकार जाता है; दरोगाजी ने बुलवाया है। सालिगराम धवराये, लपके थाने पहुँचे। देखा थानेदार साहब, जो हाल ही में बदल कर आये थे, उनके लंगोटिया यार थे। दो घड़ी हँसे-बोले। घर आये तो बाकी किस्सा भी सुना। डाक्टर भी घर आ गये। डाक्टर ने सालिगराम को ठंडे दिल से सब बातें समझाईं। उस समय मुहल्लेवाले सालिगराम को शंका की दृष्टि से देख रहे थे। अपने बारे में इतनी बुरी अफ़वाह फैल जाने के कारण सालिगराम आपे से बाहर हो गये— “इस औरत को बिना धमकाये काम नहीं चलेगा। यह सबकी इज्जत ले डालेगी। सौभाग्य से यहाँ के थाने में हमारे पुराने दोस्त सब-इंस्पेक्टर पुलिस होकर आ गये हैं। अभी एक सिपाही इसके यहाँ भेजवा कर धमकाये देता हूँ।”

लगभग दिन के दस साढ़े दस बजे मुल्लर की महतारी के घर पर सारा मुहल्ला जुड़ा हुआ था। मुल्लर तीन बदमाशों के साथ पकड़ा गया, घर में चोरी का सामान भी मिला। सिपाही धमकी के लिये भेजा गया था, पुराने सज़ायाफ़ता गुण्डों को मुल्लर के घर में देखकर उसे शंका हुई। बाद में यह कांड हुआ। परसों रात एक बड़ी चोरी हुई थी, उसका पता संयोग से लग गया।

अपने घर का पर्दा फ़ाश होते देखकर मुल्लर की अम्मा पागल हो गईं। अब गली-गली घूमती हैं। हर एक घर के दरवाज़े पर खड़ी होकर कोसने कोसती हैं—“मोर बचौना तो सरबन पूत आय। उइ तो ओलम टी टी बाचत आय। ई सब मुहल्ला वाले.....”

मेरे आदि गुरु

पुराने भारतीय गुरुओं के सम्बन्ध में बहुतों ने बहुत कुछ जो सुन रक्खा होगा उसका एक रूप बीसवीं सदी में रहते हुए भी हमने आंखों देखा है। बचपन में जो पंडित जी हमको पढ़ाते थे, वे प्राचीन ऋषि-गुरुओं की आत्मा और वेशभूषा न रखते हुए भी किसी हद तक उनसे मिलते-जुलते हुए अवश्य थे। मसलन मार्च के महीने में तीसरे पहर यदि आप कभी उनके यहां पहुँचे होते तो हम में से किन्हीं दो छात्रों को आप ज्योमेट्री का थ्योरम ज़ोर-ज़ोर से सुनाते हुए पंडित जी की दो गायों की सानी करते हुए पाते। कोई लड़का आपको बाबर के बाप हुमायूँ का माहात्म्य बखानता हुआ पंडित जी के आँगन के साथ-साथ इतिहास को बटोरता हुआ भी मिल जाता। तीन-चार बजे का समय दरअसल पंडित जी की भांग घोटने का समय हुआ करता था। वे अपने नवाबी ज़माने के बने हुए मकान की पौली में चबूतरे पर दत्तचित्त हो सिलौटी पर विजया सिद्ध किया करते थे। जब तक भांग पीसते-पीसते सिल न उठ आये तब तक पंडित जी अपने आसन से उठते न थे। इस कार्यक्रम में लगभग डेढ़ घंटा लगता था। उतने समय में पंडित जी विद्यार्थियों से सानी-पानी, झाड़ू-बुहारू आदि काम करवाया करते थे। परन्तु इस कामों को करते हुए भी लड़कों का अपनी पढ़ाई जारी रखना नितांत आवश्यक था; पंडित जी किसी की एक पाई भी मुफ्त में खाना हराम समझते थे। पौली में बैठकर भांग घोटने के कारण चूँकि पंडित जी और उनके विद्यार्थियों के बीच

में दीवाल की आड़ होती थी, इसलिए उनका आदेश था कि सब लोग ज़ोर-ज़ोर से अपना पाठ याद करें जिससे कि उन्हें सुनाई पड़ता रहे। नतीजा यह होता था कि सरस्वती की मानस-मृत्ता चुनने वाले हंस मिल कर कौवा-शोर मचा देते थे। ज्योमेट्री की थ्योरमें, इतिहास की कथायें, भूगोल की कर्क, मकर और विष्वत रेखायें, हिंदी में चरित्र गठन के महत्व के साथ लिपट-उलझ कर सब्ज़ीमण्डी के कबड़ियों की तरह अद्भुत स्वर-वैचित्र्य उपस्थित किया करती थीं। इस रटाई के कार्यक्रम में हमें खरा आनन्द आता था। अदब से बैठने की ज़रूरत न होती थी; क्योंकि पंडित जी सामने न होते थे। उठ-उठ कर एक-दूसरे को टीपें लगाना, मुँह चिढ़ाना, चोंच दिखाना आदि मनोरंजक कार्यक्रम करते हुए हम चौबीस घंटों में केवल उतना ही समय अपना मानकर सुख से बिताया करते थे, क्योंकि मार्च का महीना होता था। हमारी सुबह स्कूल की, और दिन के एक बजे से लेकर रात के नौ बजे तक का समय पंडित जी का हुआ करता था। सालाना इम्तहान के चार महीने पहले से हमारे खेल-कूदों पर पूर्ण प्रतिबंध लग जाता था, क्योंकि पण्डित जी अपने किसी विद्यार्थी का फेल होना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। दीवाली बीती नहीं कि पण्डित जी की आज्ञानुसार हमें अपने-अपने घरों में सुबह चार बजे उठकर पढ़ने बैठ जाना पड़ता था। जो लड़का चार बजे उठ कर पढ़ना न आरम्भ कर दे उसकी खैर नहीं। कड़कड़ाती हुई सरदी में भी कंबल ओढ़ कर एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ लट्ट लिये हुए पंडित जी विभिन्न गलियों में रहने वाले अपने सभी विद्यार्थियों के घरों पर जाकर आवाज लगाते थे : “फ़लाने !” और फ़लाना अगर एक आवाज़ में न बोला तो उसकी खैर नहीं। इस बुरी तरह धुनते थे कि देखने वालों को दर्द लगाता था। लड़कों के माता-पिता मार-पीट के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते थे; विद्यार्थी को पढ़ाने से पहले उसके अभिभावकों से मारपीट की शर्त वे तय कर लेते थे। ‘छड़ी

लागे छम-छम ओर विद्या आत्रे धम-धम' के सनातन सिद्धांत में उनका अटूट विश्वास था ।

उस समय शहर में कुलजमा दो-तीन सिनेमा-घर थे, उनमें भी हिंदुस्तानी फिल्मों का सिनेमा केवल एक 'रायल' ही था, जो कि अमीनाबाद में था । मूक चित्रपटों की हीरोइन मिस पन्ना, मिस लोबो, गोहर, जुबेश, जेबुत्रिसा, माधुरी, सुलोचना आदि हम लोगों के परम आकर्षण की जिन्स थीं । परन्तु दिसंबर से लेकर मई के पहले हफ्ते तक हम उनकी झलक भी न देख पाते थे । सिनेमा देखना तो दर-किनारा, चौक से अमीनाबाद तक जाने का आर्डर भी न था । मुझे अच्छी तरह याद है कि एक लड़का अपनी माँ के साथ किसी रिश्तेदार के घर अमीनाबाद गया था । सयोग की बात है कि पंडित जी भी उस दिन अमीनाबाद गये हुए थे । वह लड़का अपने सम्बन्धी के बेटे के साथ बाज़ार घूमने निकल आया था । पंडित जी ने उसे देख लिया । देखते ही उनके चेहरे पर ऐसी घबराहट आ गयी मानों वह लड़का आत्महत्या करने के लिए निकल पड़ा हो । पचास ऊदम से दौड़ते हुए पंडित जी उसके पास पहुँचे ओर हाथ पकड़कर हांफते हुए बोले— "मोए, अमीनाबाद घूम रहा हैगा !" फिर उसकी एक न सुन अपनी ही धुन में उसे भरे बाज़ार में ही धुन डाला । आसपास भीड़ जमा हो गई । लोगो ने समझा कि शायद यह लड़का पण्डित जी की जेब काटकर भागा है, इसीलिए वे उसे मार रहे हैं । वमुश्किल तमाम उन्होंने यह सुना कि वह अपनी माँ के साथ एक सम्बन्धी के घर आया है, सिनेमा देखने नहीं आया । पंडित जी उसका हाथ पकड़कर सम्बन्धी के घर गये, अन्दर से सूचना मँगवाई, और जब उन्हें विश्वास हो गया कि लड़के का कथन सत्य है, तब उन्होंने उसे छोड़ा ।

गर्मी शुरू होते ही उनकी आज्ञा से हममें से हरएक को नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्मी वूटी पीनी पड़ती थी और वह भी एक खास दूकान

से लाकर । जो ब्राह्मी दूटी न पिये उसे भी मार पड़ती थी । परीक्षा के दिनों में दो नियम हमें और भी पालन करने पड़ते थे । एक तो दिन-वार के अनुसार शकुन करके घर से निकलना और दूसरे पंडित जी के इष्टदेव, एक ग्वास मन्दिर के गणेशजी के दर्शन करना । इन कार्यक्रमों में चूक पड़ जाने पर भी करारी मार पड़ती थी । शकुनवाली कविता तो मुझे अब तक याद है—

“रवि को पान सोम को दर्पण, मंगल को गुड़ कीजै अर्पण ।
बुध को धनिया बीफै राई, सूक कहे मोहि दही सुहाई ।
सनीचर कहे जो अदरक पाऊं, तीनों लोक जीत घर आऊं ।”

इतना सब हमसे कराने के बाद पण्डितजी अपने कमज़ोर विद्यार्थियों को पास करवाने के लिए स्कूल के मास्टर्स की खुशामद भी किया करते थे । एक बार उनके ही मुहल्ले में रहनेवाले एक मास्टर महोदय ने उनके एक विद्यार्थी को फ़ल कर दिया । पंडितजी बेहद विगड़े । उसके घर के सामने गली में खड़े होकर पंडित जी ने उन्हें सैकड़ों गालियां सुना डाली और यह धमकी भी दे दी कि ‘निकलना साले कभी, मारे जूतों के खोपड़ी गंजी कर दूंगा ।’

चार महीने तक वे मास्टर महोदय अपने एक पड़ोसी के पिछवाड़े के दरवाजे से दूसरी गली में होकर आते-जाते थे; क्योंकि पंडित जी अपने चन्तूरे पर जूता लिए हुए रोज़ उनकी प्रतीक्षा किया करते थे ।

रिज़ल्ट के दिन के लिए भी उनका एक आदेश था--‘पास हो के आओ तो हाथ में तरबूज की फाँक ज़रूर हो ।’ परीक्षाफल निकलने के दिन पंडित जी घनघोर पूजा-पाठ कर बड़े आकुल-व्याकुल भाव से अपने घर के सामनेवाले चबूतरे पर बैठकर हम लोगों की प्रतीक्षा किया करते थे । दूर से हम लोगों को देखकर उन्हें फिर इतनी भी ताब न रह जाती थी कि लड़के पास आकर उन्हें अपना परीक्षाफल सुनाये । इसीलिए तरबूज की फाँक हाथ में रखने का आदेश था । दूर

से ही तरबूज की फाँकें देखकर उन्हें हमारे रिजल्ट का पता चल जाता था। एक बार परीक्षाफल के दिन मेरे नए जूते ने मेरे पैरों को छालेदार बना दिया था। इसलिए लँगड़ाता हुआ चला आ रहा था। रास्ते में तरबूज वाले के यहाँ मुझे फाँक भी न मिल सकी, क्योंकि लड़कों ने ग्वरीद ली थी। मैं ग्वाली हाथ पास हुए लड़कों से दस ऊँदम पीछे पैर के छालों से परेगान लँगड़ाता हुआ चला आ रहा था। मेरे हाथ में तरबूज की फाँक न देखकर पंडित जी ने समझा कि मैं फेल हो गया। तैश में भरे पंडित जी चबूतरे से लपक कर उठे और लड़कों की भीड़ चीर कर मेरे पास पहुँच उन्होंने धमाधम घूसे और चाँटे लगाने शुरू कर दिये। “मुर्दे, तुझे इत्ता-इत्ता पढ़ाया फिर भी फेल हो गया।”

मेरे मित्रगण चिल्लाए: “पास हो गया है पंडित जी, पास हो गया है।” पंडित जी ने मारना छोड़कर एक सेकेण्ड के लिए प्रश्न और प्रसन्नता के सम्मिश्रण से भरी हुई दृष्टि से मुझे देखा और फिर दूसरी धुन में मारना शुरू कर दिया: “अबे तो तरबूज की फाँक क्यों नहीं लाया? पचास बार कह चुका हूँ कि मुझे दिल की बीमारी है, फिर भी मेरा दिल दहला देते हैं, ऐसे हैं आजकल के कमब्रूत चेले!”

मारने में मेरे आदि गुरु तन्मय हो जाया करते थे, यह सच है, परन्तु उन को अपने बच्चों के समान फल खिलाना भी उन्हें सुहाता था। लड़कों की पढ़ाई को लेकर इतना अधिक सतर्क रहनेवाले प्राइवेट ट्यूटर अब कहां मिलेंगे? पंडित जी अब नहीं रहे, परन्तु उनकी करालता की वह स्मृति आज बड़ी मधुर होकर मेरे ध्यान में आ रही है। मैंने उनकी बहुत मार खाई है; क्योंकि हिसाब में कच्चा था। नशे में वे अक्सर मुझे बेटों ही बेटों धुना करते थे। ऊपर से पंडित जी की मां, बहन, भावज इस मार को देखकर विल्लातीं: “अरे लड़के को मार डालेगा क्या!” पर पंडित जी एक बार बेंत उठाकर तब तक नहीं छोड़ते जब तक कि उनकी साँस न फूलने लगे।

मैं उन्हें अपनी हर किताब छपने पर अवश्य ही भेंट करने जाता । जब पहली किताब छपी तो उसमें मैंने लिखा था कि—“जिनकी बेटों की मार की कृपा से आज इस योग्य हुआ ।” जब दूसरी किताब लेकर पहुँचा तो उसमें यह सब न लिखकर कुछ और लिखा था । पंडित जी बोले : “यह सब कुछ नहीं, वही बेटों की मारवाला मजमून लिखो बेटा ।” उसके बाद से मैं बार-बार यही करने लगा । पंडित जी मेरी नई किताब को सुबह जब घर से निकलते तब लेकर ही ; जिससे मिलते, जहाँ जाते वहाँ बात चलाकर वह पुस्तक अवश्य दिखलाते, कहते : “यह मेरा शिष्य है । देखिये, इसने लिखा है कि बेटों की मार की बदौलत यह इस योग्य बना । यही इसकी योग्यता है ।”

यदि कोई उनसे किताब पढ़ने के लिए मांगता तो वे उसे पढ़ने को न देते थे, कह देते : “यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है इसको तुम न समझ पाओगे ।” पंडितजी न स्वयं किताब पढ़ते थे और न किसी को पढ़ने देते थे ; किताब उनके हाथ में तब तक अवश्य रहती थी जब तक कि उसका एक-एक पन्ना ढीला होकर उड़ न जाय ।

दफ़ीने की खुदाई

सा इस का ज़माना है। आप जादू-टोने पर यक़ीन नहीं करेंगे : मैं भी नहीं करता था। मगर आपसे सच कहता हूँ, पिछले महीने-डेढ़ महीने के अन्दर मैंने जो देखा है, वह अगर सच नहीं तो सच से सवा-सोलह आना बढ़कर ज़रूर है।

हुआ यह कि लखनऊ में शाही ग़ज़ाना खुदने लगा। हमारे मुहल्ले में, अजी शहर के कोने-कोने में हर शस्स जिसके पास भी दादालाई जायदाद थी, यही सोचने लगा कि हो न हो हमारे घर में भी करोड़ नहीं तो लाख अर्शफ़ियों का घड़ा ज़रूर गड़ा है। घर-घर जन्मपत्रियाँ खुलने लगीं, पंडित-मौलवियों के घरों की चौखटें अपने-अपने घरों के दफ़ीनों का हाल जाननेवालों की आवाजाही में घिस गयीं, सरकार का दफ़्तर गड़ा धन खुदवाने वालों की अज़ियों से पट गया...और हम बैठे-बैठे मज़ा लेते रहे। शहर दफ़ीनों की अफ़वाहों से दबा जा रहा था, आये दिन दो-चार हम भी लाद देते थे।

मगर एक दिन हम पर भी लद गयी जनाव ! सुबह जो आँख खुली तो घर की लक्ष्मी काँफ़ी का प्याला लिये खड़ी मुस्करा रही थीं। यहां टुक बात का तार तोड़कर एक बात मतलब की कह दूं, अगर कभी आप मुझे अपने घर चाय पीने के लिये बुलायें और आपको अक्सर बुलाना भी चाहिए, तो चाय का मुहावरा बरक़रार रखते हुए भी काँफ़ी ही पिलाइयेगा। आपकी दुआ से मैं अससरे-नौ

इंटेलेक्चुअल हो गया हूँ और चायवाली इंटेलेक्चुअलता अब पुरानी पड़ गई है। अच्छा तो खैर, काँफ़ी की एक चुस्की से दिमाग़ के दड़बों में सोये हुए इज्जों में कबूतर फड़फड़ाने लगे, मगर तब तक घरवाली बड़े नाज़ोअंदाज़ से मुस्कुरा कर बोली—“सुनो, मुझे एक सपना हुआ है।”

मने कुछ न कहा, मन में खीझ कर सोचा किये घरवालियों की क्रौम भी अजीब है कि इन्हें हर वक्त कुछ न कुछ होता ही रहता है...कभी सिर में दर्द होता है, तो कभी पेट में दर्द होता है, कभी औलाद होती है और कभी कुछ नहीं तो सपना ही हो जाता है। बहरहाल, गृहलक्ष्मी ने फिर मिठास घोली, कहा—“परसों रात में मैंने क्या देखा कि अपने घर के सामनेवाले पीपल से सफ़ेद कपड़े पहने हुए सफ़ेद बुराक़ दाढ़ी वाले एक सैयद बाबा अपने घर की छत पर उतरे, नीचे आये और आकर सीधे भंडारघरवाली कोठरी में घुस गये। फिर मुझसे कहा कि इसके नीचे तबिये के दो देग गड़े हैं, एक छोटा है, उसमें चार लाख के जवाहरात हैं और जो बड़ा है उसमें एक लाख मोहरें हैं, ये तेरे भाग की हैं, तू ले ले। फिर सैयद बाबा ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और बोले कि जा, तेरा घर राजमहल बन जायगा। बस फिर मेरी आँख खुल गई, देखा तो सबेरा हो गया था।”

मैंने कहा, “बस-बस रहने दो, जान पड़ता है, तुम्हें भी शहर की हवा लग गयी है। भला इन गुप्पों में क्या धरा है?”

“चलो-चलो, रहने दो, ” वे बोलीं, “तुम्हें तो जितनी काम की बातें होती हैं, उनमें गुप ही सूझती है। अरे कल मैंने पाटेनाले के एक मौलवी को बुलाकर पूछा था। उन्होंने कहा कि भोर का सपना, फिर सैयद बाबा की बात भला कभी झूठ हो सकती है?”

मैं कुछ देर तक तो उनका मज़ाक़ उड़ाता रहा, पर जब मेरी घरवाली ने यह बतलाया, “मौलवी साहब ने मुन्नी के अँगूठे के नाखून

पर काजल लगाकर तस्बीह फेरी और कहा कि अगर दफ़ीना हो तो इस पर उसकी फ़ोटो बन जाय और बन भी गयी, तब यह हाल सुनकर मेरा जी भी ज़रा कुनमुनाया। मैंने कहा कि अच्छा आज उन्हें बुलवाओ। मैं भी देखूँ।

बड़े-बड़े बुलावों पर मौलवी पीरबख्श साहब तशरीफ़ लाये। सुरमगीं आँखें, उन पर सुनहरा चश्मा, हिनाई दाढ़ी, सब्ज़ अमामा, सब्ज़ चोगा, दोनों हाथों में चाँदी की अँगूठियाँ और लोहे के छल्ले। मुझसे फ़रमाया—“आप अंग्रेज़ीदां लोग इन बातों पर यक़ीन नहीं करते। और मैं कहता हूँ कि बस यहीं.. आप अपने हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मार लेते हैं, तक्रदीर को सिकन्दर से चुकन्दर बना देते हैं। आज मैं आपको वह करिश्मा दिखलाऊँगा कि आप भी कहेंगे कि हां, अल्लाहवाले से वास्ता पड़ा था।”

यह कहते ही जनाब, वह चट से उठे, जेब से रूमाल निकाला, उसमें टीन की दस डिब्बियाँ बँधी हुई थीं। बोले—“इनमें खुदा की खुदाई भरी हुई है। सात डिब्बियों में सात आसमानों को अपनी आँखों देखने के लिये सुरमें रखे हैं, आठवीं में वह सुरमा है कि लगाकर अपनी छत पर बैठ जाइए और तमाम दुनिया का हाल देखिए, डिब्बी नम्बर नौ के सुरमें में वह तासीर है कि अगर लगा कर अपनी माशूक़ा (बीबी नहीं) के सामने खड़े हो जाइये, तो उसके दिल का नज़ारा दिखलाई पड़े और दुश्मन के सामने खड़े हो जाइये तो उसके दिल का भेद लीजिए। और डिब्बी नम्बर दस में उल्लू की आँख का सुरमा है, जिसे लगाते ही आप को घरती में गड़ी दौलत नज़र आयेगी।”

हम चित तो खैर हो नहीं सकते क्योंकि इंटेलेक्चुअल हैं—मगर फ़्लैट ज़रूर हो गए। जी में आया कि डिब्बी नम्बर नौ का सुरमा लगाकर पहले अपनी....मगर घरवाली सामने थीं, इसलिये डिब्बी नम्बर आठ का सुरमा आँज कर यू० एन० ओ० की पंचायत देखने की इच्छा की। मगर मेरी

गृहलक्ष्मी उल्लूवाले सुरमे पर अड़ गई। मौलवी साहब ने पीतल की छड़ निकाली जिसके एक सिरे पर पंजा बना था और दूसरी ओर बागीक सुरमे की सलाई-जैसी नोक थी। कुछ पढ़कर मौलवी साहब ने डिब्बी नम्बर दस पर तीन बार पंजा फेरा, डिब्बी खोली और फिर सुरमा सलाई लेकर मेरे नजदीक इस तरह खड़े हुए जैसे नाई हजामत बनाने के लिये उस्तरा लेकर खड़ा होता है।

आपसे हर 'इज्म' की क़स्म खाकर कहता हूँ, उल्लू का सुरमा वह जादू है जो सिर चढ़कर बोलता है। सबसे पहले तो अपनी किताबों की आलमारी के पीछेवाली दीवार में ही नज़र गई। पलस्तर और लक़ौरी के दो गज़ अन्दर एक सेठानी जी की प्लटिनम की क़द्दे-आदम मूर्ति रखी थी, वह अपनी गोद में एक लल्ला लिए बैठी थीं।

मौलवी साहब ने उसे देखकर फिर पीतल के पंजे को हवा में कुछ आड़ा-तिरछा घुमाया। एक बार आसमान की ओर नज़र डाली, फिर अपने खुदा के हिताई नूर पर उँगलियों से कंधी करते हुए बोले—“ऊपर वाले का कहना है कि जिस सेठानी की यह मूर्त है वह ईस्वी सन् ४८० में नव्वाब नसीरुद्दीन हैदर के नगर सेठ की बीवी थी, उसने जब लड़का गोद लिया था, तब लखनऊ के एक कुम्हार से यह मूर्त ढलवाई थी।”

मेरी आँखों में उल्लू की आँखों का सुरमा अँजा था। गड़ा धन देख रहा था, मैंने सोचा कि कम से कम ढाई मन की तो यह मूर्ति होगी ही। प्लैटिनम की दुनिया में यों भी बेहद कमी है, इस मूर्ति को गलवाकर दो करोड़ पैदा कर लूंगा। फिर तो बस क्या अर्ज करूँ, दिल बाँसों उछलने लगा, फिर देग़ाचे देखे। अजी करोड़ों की दौलत ! मन फूलान समाया, सोचा जब इतनी दौलत पा लूंगा तो फिर ठाट से अपने महल में बैठकर प्रगतिवादी कवितायें रचा करूँगा।

दूसरे ही दिन मैंने मज़दूर बलवाकर दीवार खुदवानी शुरू की। दिन भर में पूरी दीवार खुद गयी, मगर प्लटिनम की नगर सेठानी न निकली। मैं बड़ा चकराया, दौड़ा मौलवी साहब के पास गया। वह डिब्बी नम्बर दस का सुरमा लिए दौड़े आये, आँज कर देखा तो कहने लगे कि 'बल्लाह ऊपरवाले की कुदरत है। मूरत तो बाँई दीवार में सरक आई है।'

दूसरे दिन वह दीवार भी खुद गयी, तब पता लगा कि ऊपरवाले की कुदरत से मूर्ति छत की दसवीं धन्नी में बने हुए दीमकों के बिल में घुस गयी है।

मेरी घरवाली बोली—'लक्ष्मी चलती है, पहले इसको किसी से बाँधवाओ तब यह पकड़ में आयेगी।' मौलवी साहब ने एक परात में पानी मँगवाया और दसवीं धन्नी में एक दीपक के बिल के नीचे उसे रखवा कर फिर उद्द के सात दाने फूक कर मारे और कड़क कर कहा कि "थम जा!"

ऐ जनाव, ऊपरवाले की कुदरत, धन्नी इस ज़ोर से फटी मानो नाइ-ट्रोजन बम फटा हो! कमरे में उजाला ही उजाला फैल गया और धन्नी से एक ओरत, जिसका आधा घड़ लोमड़ी का था, परात के पानी में छप से कूदी ओर बड़े ज़ोर से मुराती हुई हम लोगों की ओर दौड़ी।

आप से सही अर्ज करता हूँ दस, जान बचाते ही बनी किसी तरह। और दो करोड़ की लक्ष्मी घर से भाग गयी।

मेरी गृहलक्ष्मी ने कहा कि "इन मौलवी साहब से न बनेगा, महरी बतलाती थी कि कालीवाड़ी में आजकल एक बंगाली पंडित आया हुआ है, वो सातों विद्या जानता है। उसे कामरू कमच्छा की देवी सिद्ध है।"

मौलवी साहब को सुनकर तैश आ गया, बोले—"साहब, मेरे पास भी इल्म है। मैं भी अपना हुनर दिखलाऊँगा।"

दूसरे दिन से दो इल्मों की लड़ाई चली । एक तरफ मौलवी साहब बैठे, दूसरी ओर यंत्राचार्य, तंत्रतीर्थ, मंत्र-वाचस्पति पंडित पाँचकौड़ी ढोल ।

मौलवी साहब ने अपनी नम्बर ३ की डिब्बी का सुरमा आज कर फलक नम्बर एक को देखा ओर फरमाया —“ऊपर वाले तेरी कुदरत ! पहली ड्योढ़ी पर जादू का ढोल बज रहा है । देख, मैं ये लैला, ये शीरी, ये हीर, और ये सोहनी की चिट्ठी उँगलियों के नाखूनों का, इनके आशिकों के खून में भिगो कर मुसलसल चालीस चाँदनी रातों में तैयार किया हुआ सफूफ फेंकता हूँ, ऊपरवाले की मेहर से ढोल फट जायगा ।”

यह कहके झोली से एक पुड़िया निकाली ओर जो चुटकी फूकी तो ऐसा मालूम हुआ कि ज़मीन से आसमान तक हज़ारों उड़न तश्तरियाँ उड़ रही हैं । पलक मारते ही दुनिया दहला देनेवाला धमाका मुना । देखते ही देखते आसमान का पर्दा फट गया । स्टेज के सीन की तरह फटा और सामने ही, पहली ड्योढ़ी पर ढोल बजता नज़र आया । उड़न-तश्तरियाँ ढोल पर यों टूटीं गोया बाज़ टूटे हों ।

इधर पंडित पाँचकौड़ी ने भी आकाशी ढोल को देख कर ठहाका लगाया और वह हज़ारों तश्तरियाँ ढोल में समाती चली गयीं । ढोल बजता रहा ।

अब ढोल मोशाय बोले—“अब बोलो ओस्ताद, अब हम दूसरा आकाश में जाता हाय ।”

फिर सीन बदला, फिर बदला । हम सब ठगे रो खड़े देखते ही रह गये ! कभी मौलवी साहब कल्लू बीर को भेजते तो पंडित जी चाँसठ योगनियों में से एक को उसके पीछे छोड़ देते, भैरों, बरनापीर, चंडी, मुंडी मसानी जाने कौन-कौन से देवता-पीर आपस में भुगत गये । कभी ये शेर बनें तो वे चूहा बनकर बिल में घुस जाँय . तो फिर वह सांप बन कर इन्हें निगलने को झपटे और वह भैंसा बन जाँय । अल्लमा-अल्लमा ! मैं सोचने लगा कि जब जादू

टोनों की लड़ाई में ये करिश्मे हैं तो साइंटिफिक लड़ाई में खुदा जाने क्या हाल होगा। सोचता तो ओर भी बहुत कुछ, क्योंकि दो जादुई इल्मों के युद्ध ने दिमाग में 'इज्मों' के कवूतर जगा दिये थे, मगर यह कि सोचने की फुरसत ही कहाँ थी भाई जान !

पाँचकौड़ीजी एक मंत्र पढ़ कर भेड़िया बने, पीरबख्श साहब चट से मुर्ग बन गये। भेड़िया पंडित हूँसे, कहा,—“व्याटा आव फोंशा। हाम तुमको आव येई जोनी में बाँध देता है।” यह कहकर उन्होंने एक जवाकुसुम का फूल मुर्ग पर तान मारा।

बेचारे पीरबख्श फिर बेबस मुर्ग ही बने रहे। घर से बाहर उड़ गये। एक कबड़िये ने पकड़ लिया। शहर में एक और जगह ख़ज़ाना खुद रहा था, वहाँ ख़ज़ाना भाँपने के लिये एक मुर्ग की जरूरत थी। वहाँ के मौलवी साहब ने हमारे मौलवी साहब को मंत्र पढ़ कर ख़ज़ाने पर उड़ाया। जब ख़ज़ाने पर पीरबख्श को किसी दूसरे जादूगर का मुर्ग बनकर उड़ना पड़ा तो बड़े फड़फड़ाये। तभी चट से ऊपरवाले की मेहर से इन्हें एक मंत्र याद आया। आते ही इनकी रूह सिगरेट के धुएँ सी हवा में उड़ गई। मुर्ग की लाश गिर पड़ी। बेचारे ख़ज़ानेवालों का सगुन बिगड़ गया।

खैर साहब, मौलवी पीरबख्श फिर मेरे घर आ डटे, उस समय पाँच कौड़ी जी हमारा ख़ज़ाना खुदवाने का उपाय कर रहे थे।

पीरबख्श गरजे, कहा—“देखें, अब तू इसे क्योंकर ख़ज़ाना दिलवाता है। देख मेरा ज़ोर !” यह कहकर फूँक मारी तो ज़मीन फट गई, दोनों देगें निकल आई और आस्मान की ओर उड़ चलीं। मौलवी साहब उनके साथ उड़े। ढोल पंडित ने यह देखकर फेंटा कसा और उड़े। उड़ते-उड़ते दोनों चले जा रहे थे। कभी वो आगे तो कभी वह पीछे। कभी घन इनके साथ तो कभी उनके साथ..दो इल्मों की इस आस्मानी लड़ाई के बीच में लक्ष्मी फ़ुटबाल बन गई। तेज़ी इतनी कि पीने पाँच सेकंड में लखनऊ से कानपुर पहुँच गये।

मौलवी साहब ने इस बार दोनों देगों हथिया ली और उन्हें लेकर तेज़ी से उड़े। बीच में मेमोरियल वेल पड़ा। मौलवी साहब ने लपक कर दोनों देगों कुएँ में डाल दीं। उसमें गुदर में मारे गए अंग्रेज़ों के अनगिनत प्रेत हैं जिन्होंने अब भी 'ब्रिट इंडिया' नहीं किया।

मौलवी ने टहाका लगा कर कहा—“हः हः अब कैसे पाओगे ?”

ढोल बोले—“खैर कोई हरजा नेई। इशमें कुछ काल ओबश्श लगेगा पर तुझको हाम शूँश शाँप बोना देगा। मुर्गा जोन से तुम छूट गया, कारोन कि मुर्गा बौत है, परन्तु शूँश शाँप बौत कम हाय।”

अब आपसे क्या अर्ज करूँ ! कानपुर के मैमोरियल वेल से माल रोड पर आनेवाला सूँस-साँप हमारे बेचारे मौलवी साहब ही हैं। बेचारे अजायबघर में रखे गये।

ढोल उसकी दशा देख कर बोले—“एक मानुष को पोशु बोना कर हाम अच्छा नेई किया। अतः अब श्री तीर्थराज के शेंगम की एक सूँश को हाम मानुष बनायगा।”

२९ अक्टूबर की रात को १२ बजे संगम पर तंत्रतीर्थ पाँचकौड़ी ढोल एक सूँश को मनुष्य बनायेंगे। उन्होंने मुझे यह चमत्कार दिखलाने का वचन दिया है।

पड़ोसिन की चिट्ठियाँ

सावित्री सीने की मशीन खरीदने गई थी। लेकिन बड़ी देर हो गई ! मैं उतावला होकर सोचने लगा कि अब तो उसे आ जाना चाहिए। ३ बजे हैं। पिछले बीस दिनों से, जबसे सावित्री यहाँ आई है, हम पहली बार इतनी देर के लिए अलग हुए थे। नई पत्नी वैसे ही आकर्षण की चीज़ होती है—उसके सामने दुनिया में कुछ नहीं दिखलाई देता।

इन बीस दिनों में हमने दुई को इकाई के रूप में देखा है। हमने इतना प्यार एक दूसरे पर निछावर किया है कि हमें स्वयं ही अपनी अमूल्य प्रेम-निधि की थाह नहीं मिलती, और फिर सावित्री कवियित्री।

“पोस्टमैन” — दरवाजे की खट-खट के साथ आवाज़ आई और दरवाजे की नीचे की झिरी से कुछ चिट्ठियाँ और पत्रिकायें कमरे के फ़र्श पर आ फिसली। जब से सावित्री आई मेरे घर पोस्टमैन रोज़ आने लगा है, वरना मेरी चिट्ठियाँ तो होली-दिवाली में ही आया करती थी।

मैं दरवाजे के आगे फ़र्श पर बिखरी हुई डाक को देखता रहा। उठने में आलस लग रहा था। सावित्री के अब तक न आने के कारण मन में अनख भी थी।

इस सावित्री को अपनी जीवन-संगिनी बनाने से पहले मैंने

इन्कार कर दिया था। श्रीमतीजी मेरी भाभी की सगी फुफेरी बहन हैं। भाभी स्वाभाविक रूप से इन्हीं के कर-कमलों द्वारा मेरे गले में वरमाला डलवाने का निश्चय कर चुकी थी।

भाभी नाराज हो गई, मगर मेरी 'हां-ना' में न बदली। इसके पाँच-छः महीने बाद अपनी पत्नी का अपेंडिसाइटिस का आपरेशन कराने के लिये सावित्री के भाई साहब झांसी से लखनऊ पधारे। सावित्री भी उनके साथ ही आई थी। मेरे बड़े भैया ने पत्र लिखकर यह आदेश दिया था कि मैं उनके काम आऊँ, लिहाज़ा काम आने लगा। सरकारी फोटोग्राफ़र हूँ। मेरे काम से मेरे अफसर बेहद खुश हैं। उन्हें अस्पताल में काटेज वार्ड भी मिल गया, आपरेशन और देख-भाल भी भली प्रकार हुई। सावित्री के भाई साहब अपनी छुट्टी बीतने पर मेरे ऊपर ही पूरी जिम्मेदारी छोड़कर लौट गए। ओर फिर, जैसा कि जग जाहिर है कि जब एक सावित्री ने यमराज का पीछा न छोड़ा, तो दूसरी भला मुझे क्यों छोड़ सकती थी। उसकी सुन्दरता, कार्य-तत्परता और कार्य-कुशलता तो मन को मोहनेवाली लगी ही, बीमार के तीमारदार होने के नाते जब आपस का संकोच मिटा तो उसने बात-बात में अपने मीठे तानों से मेरे पुराने गुनाह के टाँके तोड़ दिये। उनकी भाभी भी बढावा देने लगीं।

यह सब सुनकर मेरे लिये कवियित्री का पति बनने के अलावा कोई चारा न रहा। सच बात यह है कि मैं वचन मन कर्म से सावित्री का गुलाम हो चुका था।

यह गुलामी कुछ बुरी नहीं रही। इन बीस दिनों के सहवास से ही सावित्री का यह गुलाम अपने आपको त्रिभुवन का स्वामी अनुभव करने लगा। सावित्री कवियित्री होने के वावजूद निहायत सीधे स्वभाव की और कुशल गृहणी है।

और वह अभी तक नहीं आई, कोठी के दूसरे हिस्से में रहनेवाली मिसेज राजदान के साथ गई थी, बड़ी देर कर दी ।

मैं आरामकुर्सी से उठ खड़ा हुआ, डाक उठाई, दो पत्रिकाएँ, दो पोस्टकार्ड, एक लिफाफा । पत्रिकाओं के रैपर फाड़े । दोनों में सावित्री शर्मा की कविताएँ छपी थीं, एक में उसका चित्र भी था । यह चित्र मैंने ही उतारा था । मैंने सोचा, लिफाफा उसकी भाभी या किसी सहेली का होगा । उसे भी पढ़ने की इच्छा हुई....यह क्या ? पत्र की पहला पन्ना, पहला सम्बोधन पढ़ते ही मैं सन्न रह गया, मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया । सावधान होकर एक बार फिर लिफाफे पर नजर डाली । शायद है किसी और का पत्र हमारी डाक के साथ-साथ धोखे में आ गया हो, मगर सावित्री का नाम और पता बिल्कुल ठीक लिखा हुआ था । बस यही था कि यह पत्र मेरे 'केयर आफ' होकर नहीं आया था । दिल धुआ-धुआ हो गया था । खैर, सावित्री के नाम इस भेद भरे पत्र को पूरा पढ़ जाने की इच्छा ने मन को तनिक सम्भाला । चिट्ठी लखनऊ से ही आई थी । लिखा था :

“मेरी प्राणवल्लभा,

“तुम शायद इस तरह मेरे द्वारा पुकारे जाने से नाराज होगी, पर मैं अपने आप से मजबूर हूँ । तुम अब भी मेरी रूहेरवाँ हो, मैं हरदम तुम्हारे ही नाम का जाप किया करता हूँ ।

“रानी मैं बहुत पापी हूँ, तुम्हारे योग्य नहीं । तुम जैसी देवी को पाकर भी अभागा ही रहा । मैं तुम्हारी कद्र नहीं कर सका । पर मैं तुमसे ईश्वर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यह दोष मेरा नहीं, शराव और उस बुरी सगत का था, जिसने मेरी बुद्धि पर परदा डाल रक्खा था । तुमने मुझे छोड़ दिया अच्छा किया । जिसके कारण तुमने छोड़ा, या सच कहूँ जिस काँच के लिये मैंने तुम्हारे जैसे हीरे

को अपने घर से बाहर निकाला, वह भी आज छः महीने हुए मुझे छोड़कर चली गई है। सुना है बंबई में सिनेमा स्टार होने गई है। उस पापिष्ठा ने—अब उसका नाम लेने से भी मुझे नफरत होती है—मेरे जीवन का सारा सस्व खींच लिया। मैं इसी काबिल था।

‘सावित्री—पिछले तीन वर्षों में हर पल आठों पहर मैंने तुम्हें ही याद किया है। कई बार आत्महत्या का विचार भी आया, पर अशोक का ही ध्यान कर रुक गया। उस गरीब की माँ मैंने छीन ली। अब खुद भी न रहूँ तो वह बे-सहारा आखिर कहां जायेगा। उसका क्या होगा ?

‘तुम्हारा पता लगाते हुए यहाँ आया हूँ। अशोक भी मेरे साथ ही है। कल मैंने तुम्हारे नए पति के साथ तुम्हें हजरतगंज में देखा था। तुम मुझे सुखी नजर आईं। तुम्हारा वह पति देखने में तो शरीफ ही लगता है। मैं तुमसे किस तरह बतलाऊँ कि अपनी सावित्री को दूसरे के साथ देखकर मेरा दिल कितना रोया है। तुम्हारा नाम लेकर पुकारने के लिए दिल बावला होकर बार-बार उछला। बड़ी मुश्किल से मैं अपने ऊपर काबू पा सका। खैर, तुम खुश रहो प्रिये !

‘....क्या एक बार मिल सकोगी ? एक बार आ जाओ, मैं तुम्हारे चरण छू कर तुमसे क्षमा माँगना चाहता हूँ। बस इतना ही चाहता हूँ। आओगी ? मेरे लिए न सही, अपने अशोक के लिये ही एक बार, बस एक बार। मैं होटल में आठों पहर तुम्हारी ही प्रतीक्षा करता रहूँगा।

केवल तुम्हारा

अभागा, राम”

एक साँस मैं पत्र पढ़ गया, इतनी जरा सी देर में ही मेरी दुनिया मेरी न रही। थोड़ी देर के लिये मेरी चेतना हत हो गई।

सावित्री का कोई और भी दावेदार है ? सावित्री किसी के बेटे की मा है ? सावित्री, जिसे मैं अपनी, केवल अपनी समझता था । ... पर इसने मुझे ठगा क्यों ? मेरी भाभी ने मुझे क्यों इस तरह बे-आसरा कर दिया ? ओह मैं कहीं का न रहा ।

विश्वास का उठना ही प्रलय है । दीन दुनिया ओर ईश्वर से, अपने से, मेरा विश्वास उड़ गया । खोखलापन बढ़ता ही जा रहा था । मैं सोचने लगा कि सावित्री के सामने आने पर मैं उससे नज़रें कैसे मिलाऊँगा ?

घड़ी ने चार के घण्टे बजाए । मेरा ध्यान उधर गया । सावित्री अभी तक नहीं आई । शायद उसका पहला पति उसे रास्ते में कहीं मिला हो, शायद वह अपने बेटे को देखने चली गई हो, इन विचारों ने मुझे बेहद बेचैन बना दिया है । सहसा विचार आया कि इस पत्र को यहीं पलंग पर खुला छोड़कर चला जाऊँ, सावित्री आयेगी, पत्र पढ़कर जो उसका जी चाहेगा, करेगी । उसे अपने पहले पति के पास लौट जाना हो तो लौट जाय । तीर की तरह विचार आया, मैंने बेखुदी के आलम में कपड़े पहने, जल्दी-जल्दी उसी पत्र पर एक लाइन लिखी कि तुम स्वाधीन हो । आघात, आँसू और अँधेरा यही उस समय मेरे रहनुमा थे । जिधर बढ़ा ले चले, मैं बढ़ चला ।

घंटों वीराने में बैठकर तरह-तरह की बातें सोचकर बिता दिये । सावित्री अगर अपने पहले पति के पास जाना चाहे, मान लो, चली जाये, तब मैं दुनिया को मुंह किस तरह दिखाऊँगा । दोस्त-अहबाब खिल्ली उड़ायेंगे । मैंने सोचा कि ऐसी दशा में मैं यह घर, नगर, नौकरी सब छोड़कर संन्यासी हो जाऊँगा । लेकिन अगर वह मेरे पास ही रहना पसन्द करे ?

बाहर का अँधेरा मेरे मन के अँधेरे से मिलकर चारों ओर घटाटोप छा गया । कहीं कुछ नहीं सूझ रहा था । कदम अपने आप मुझे

घर की ओर बढ़ा ले चले, शायद उनके लिये भी दूसरा कोई चारा न था ।

खिड़की के जँगले की परछाईं बगीचे की सड़क और चारदीवारी के किनारे लगी मेंहदी की बाढ़ पर लम्बी होकर पड़ रही थी, और उस परछाईं के बीचोबीच एक इन्सान की छाया अंकित थी । वह इन्सान सावित्री के अलावा, और कौन हो सकता था ? मेरे पैर वहीं के वहीं ठिठक गये, एक बार यह इच्छा भी हुई कि लौट चलो ।

“कौन है !” कोठी का चौकीदार दूसरी ओर से गश्त लगाता हुआ मेरी तरफ आया । मुझे जवाब देने पर मजबूर होना पड़ा ।

जँगले की परछाईं से इन्सानी परछाईं झट से अलग हो गई, मेरे घर के दरवाजे खुल गये, सावित्री दरवाजे पर खड़ी थी ।

मैं सावित्री से नजरे न मिला सका, सीधा जाकर आराम कुर्सी पर गिर पड़ा, और आँखें मूँद लीं । मन की तहों में दबी हुई मेरी आशा के अनुरूप सावित्री का स्वर न सुनाई दिया । मेरी स्त्री और बढ़ गई । पल, मिनट बन कर बड़े ओर मिनट भी बीत गये । सहसा मुंटी आँखों पर तेज चमक पड़ी, केमरा क्लिक होने की आवाज कान में आई । आँखें खुल गईं, देखा मेरी पत्नी केमरा लिए खड़ी मुस्करा रही है । मुझे देखते देखकर उसने कहा—“तुम्हारा यह मूड तो अब दुबारा देखने को मिलेगा नहीं, फोटो खींच ली ताकि याद रहे ।”

इतनी देर की असाध्य वेदना के कारण बात बड़े ही उलझे और अटपटे ढंग से मेरे कानों में प्रवेश कर सकी !

सावित्री हाथ पकड़कर खींचते हुये बोली—“उठिये, उठिये, आप को तो बीबी की बेवफाई सता रही है, और मेरी आँतें भूख के मारे भूलग-मुलग कर कंडा हो रही है । कहती हूँ चलो भी, उठो, हाथ-मुह धो । अभी मेरा लड़का और भूतपूर्व पति आनेवाला है मुझे लेने के लिए ।”

सावित्री मुझे अपने अनुशासन में बाँधती गई, । जैसे जैसे मन सम्हलता गया उस पत्र को लेकर मेरा कौतूहल भी बढ़ता गया । पर सावित्री को तो मुझे अभी और सताना था । अपनी खरीदी हुई मशीन दिखलाई, स्टोव, बिजली की इस्तिरी दिखलाई, मेरी कमीजों के लिये कपड़ा दिखलाया, सबके दाम बतलाये, कितनी दूकानें घूमकर किफायत-शारी से सौदा किया, इसका व्योरा सुनाने लगी ।

मैंने कहा—“सावित्री, मैं बात सुनने के लिये मर रहा हूँ !”

“मैं क्या जानूँ ? सावित्री शर्मा नाम की कोई ओर स्त्री नहीं हो सकती क्या ?”

“पर यहाँ का पता—”

“इस कोठी के अकेले किरायेदार क्या तुम्हीं एक शर्मा जी हो ?”

“तो क्या, शर्मा जी, वकील साहब की ?”

“शी ! धीरे बोलो । हाँ उनका भी वही नाम है । मिसेज राजदान मुझे बतलाती थीं, कि पहले ये शर्मा जी की बड़ी लड़की सरोज को पढ़ाने आया करती थी, फिर इन्होंने सिविल मैरेज कर ली ।”

अपनी स्थिति को सुरक्षित पाकर मेरे मन में श्रीमती सावित्री शर्मा के प्रति सहानुभूति उमड़ने लगी । ध्यान गया वे बड़ी सरल और शान्त हैं, और उनके चेहरे पर सदा उदासी की काली छाया भी पड़ी रहती है । शर्मा जी भी बड़े सज्जन और गंभीर पुरुष हैं । उन्हीं की कृपा से मुझे यह घर मिला है । क्या उन्हें अपनी पत्नी के पिछले रिश्ते का पता होगा ?

रात बड़ी देर तक हम एक दूसरे की बाहों में सुरक्षित पड़ोस के घर की बातें करते रहे ।

हम लोभ सुरक्षित होकर भी परायों के लिये उदास रहे । पड़ोसिन की चिट्ठी उसे दे दी जाय, अथवा नहीं, इस पर भी विचार किया ।

अन्त में हमने चिट्ठी न देने का निश्चय किया। दो रोज बाद फिर पत्र आया। पत्र लम्बा था और क्षमा-याचना से भरा हुआ, बड़ा ही कष्ट था। तीसरे चौथे रोज फिर पत्र आने लगे। डाकिया उन्हें मेरी सावित्री के समझ कर मेरे घर छोड़ जाता था और हम लोग भी पराई कहानी जानने के लिये उन्हें चुराकर पढ़ते रहे। इस बीच में मेरी सावित्री ने वकील साहब की सावित्री के साथ अधिक उठना बैठना शुरू कर दिया। सावित्री पड़ोसिन सावित्री की प्रशंसा करते नहीं अघाती थी। वकील साहब की पहली पत्नी के दानों बच्चों को उसने ऐसी ममता दी है कि उन्हें अपनी माँ की याद भी नहीं आती। वकील साहब का जीवन भी शान्ति और सन्तोष से भरा है।

एक दिन पत्र आया। यह पत्र सबसे छोटा था। लिखा था, मुझे इसकी शिकायत नहीं कि तुमने मुझे माफ न किया, सिर्फ मौत ही मेरे गुनाहों को माफ कर सकती है, अशोक को बुखार आ गया है, डाक्टर टाइफाइड बतलाता है, पर अब मुझमें किसी की तीमारदारी करने का कुछ भी उत्साह नहीं रहा। आज शाम से कल सुबह तक किसी भी समय, खास तौर पर ऐसे समय जब अँधेरा मेरी मनहूस सूरत को तुम्हारी दृष्टि से बचा सके, अशोक तुम्हारी कोटी के फाटक पर पड़ा होगा। अपने बच्चे पर दया आये तो उठा लेना।

पत्र पढ़कर हम दोनों घबड़ा गये। पड़ोसिन से उसकी चिट्ठियाँ छिपाकर हमने बड़ी नादानी, बड़ा अपराध किया। इससे एक व्यक्ति की जान बली जायगी। चोरी करना आसान है, पर चोरी उगलना बड़ा ही कठिन। फिर भी हमने यही करने का निश्चय किया। सावित्री बोली—“तुम होटल जाकर इस राम को बुला लाओ। मैं सावित्री से किसी तरह सारी बात समझाकर कह दूंगी।”

होटल के कमरे में पड़ोसिन के भूतपूर्व पति और उसके बीमार बच्चे को देखकर बड़ी ही दया उपजी। राम का शरीर काँटे की तरह

सूखा हुआ, चेहरे पर मुर्दानी, केवल फटी-फटी आखें ही जाने किस आशा की ज्योति से जगमगा रही थीं। पड़ोसिन का बेटा, जिसकी आयु लगभग चार वर्ष की होगी, बुखार में बेहोश पड़ा था। मैंने राम को अपना परिचय दिया और उससे फौरन् अपने घर जाने का आग्रह किया। बीमार अगोक को ले जाना या अकेला छोड़ जाना असंभव था। मैंने राम के लौट आने तक वहीं बैठे रहने का निश्चय किया।

लेकिन राम फिर लौटकर न आया, चार-पाँच घंटे बाद वकील साहब और उनकी सावित्री ने कमरे में प्रवेश किया।

सावित्री गहरी, उदास कठोर मुख मुद्रा और आँसूविहीन पथराई दृष्टि से देखने-वाली नारी अपने बेटे को देखकर कटे पेड़-सी गिर पड़ी, बेहोश हो गई।

घर जाने पर मेरी पत्नी ने बतलाया कि बड़ी देर तक राम के बैठे रहने पर भी, अपनी पत्नी को एक झलक देखने के लिये गिड़गिड़ा-हट भरी प्रार्थना करने पर भी, मेरी सावित्री के बार-बार कहने पर भी, पड़ोसिन ने मिलने से इन्कार कर दिया था।

सहानुभूति ने दोनों सावित्रियों में सौहार्द उत्पन्न कर दिया। एक दिन मेरी सावित्री ने अंतरंग झण में पड़ोसिन से पूछा : “बहन, तुमने अपने पुत्र को तो बचा लिया परन्तु उसके पिता को सदा के लिए मिटा दिया। तुम केवल पाप को ही देखती हो, प्रायश्चित्त को नहीं ?

पड़ोसिन सावित्री ने कुछ देर मौन रहकर एक दीर्घ श्वास छोड़ते हुए कहा : “परिस्थितियों ने जीवन में दोषति तो दिये; पर दो मन कहाँ से लाऊँ बहन ? अब तो एक जो था वह भी पत्थर हो गया—केवल कर्तव्य हो गया।”

पड़ोसिन सावित्री का पीला और सूखा चेहरा उसके पत्थर मन का प्रतीक बन गया था।

बंदिनी

माघ की ढली दुपहरी कुंती के कमरे में फर्श पर धूप की गर्म कालीन बिछाने लगी । कुंती चारपाई से उतरकर धूप में बैठ गयी । उसे धूप का स्पर्श पिता के सान्त्वना-भरे स्पर्श-सा लगा । दिन भर के बाद उसके हुटन-भरे दिल की बेड़ियां तड़कीं, आँखों में तेजी से आँसू छलछला उठे । नजरें खिड़की के बाहर सूरज को देखने लगीं, जैसे स्वर्गीय पिता को देख रही हों । आँसू कलेजा हिला-हिलाकर उमड़ने लगे । कुंती की भावना थी कि वह अपने लिए नहीं, अपने बाबूजी के लिए रो रही है । बाबूजी होते तो क्या उनकी बिटिया को कोई यों ताले में बन्द करके रख सकता था, ऐसे सता सकता था ? आँसुओं की बाढ में कुंती बही जा रही थी ।

पिछली रात आठ बजे उसके पति कमरे में बंद कर गये थे । रात बारह-एक बजे जब उनकी भर्जी होगी लौटेंगे । नशे में धुत्त रहे तो सबेरे ही ताला खोलने की सुध आयेगी । कल से एक बूंद पानी तक से भेंट नहीं हुई । कुदरत की जरूरतों के लिए भी मन मारे बैठी है । अपने आपको चट्टान मानकर अब तक वह मौन रही ; अब मौन की गंगा उसका चट्टान-सा कलेजा फोड़कर बह निकली है तो कोई बंधन नहीं मानती । धड़कनों और सुबकियों में उसके प्राण खिंचे आते हैं ।

“मां !”—शब्द की ध्वनि कुंती के बहते मन में भँवर बनकर गूँज उठी ।

“मां !”—सुन कर कुंती ने नीचा मुँह किये ही पल्ले से आँखें पोछी और मुबकियों को रोकते हुए उठ बैठी। बाहर जँगला पकड़े रीता खड़ी थी। वह फौरन ही उठकर खिड़की के पास आई और पूछा—“तू यहाँ क्यों आई री ?” कहने के साथ ही उसने हाथ जँगले से बाहर निकाल कर रीता का हाथ छुआ, कगल छुआ; रीता ज्वर से तप रही थी। उसका गोरा चेहरा मुखी से तमतमा रहा था, पतले होंठों पर पपड़ी पड़ी हुई थी, गुड़हल के फूल ऐसी आँखें बुखार के नशे में चढ़ी हुई थीं। कुती खीझ कर बोली—“निगोड़ी मुझसे किमने कहा था यहाँ आने को ? भट्ठियों सी तो तच रही हैं। किसके साथ आई ?”

“मैं तुम्हारे पास रहूँगी मां। ताला खोलो।” रीता से खड़ा नहीं हुआ जा रहा था। उसके बुझार और अपनी कैद की परवशता को लेकर कुंती पागल हुई जा रही थी। उसका जी होता था, कैसे जंगले तोड़ दूँ, किबाड़ तोड़ दूँ और बाहर जाकर अपनी रीता को कमरे में ले आऊँ।

लेकिन इसी के लिये तो शशिकांत कमरे में वन्द कर गये हैं। कल वह दिन भर रीता के पास बैठी रही थी। रीता की मां को घर आने पर यह सुनकर बुरा लगा था। रीता की मां के कहने से उसके मैनेजर शशिकांत मेहता आज सबेरे अपनी पत्नी को लाखों कहनी न कहनी सुनाकर वन्द कर गये थे। इस समय फिर वही स्थिति है बल्कि कल से भी विषम। भरे बुझार में उठकर लड़की अपनी कोठी से दो-तीन फर्लांग चल कर यहाँ आई है। कही कुछ ऊँच नीच...

“मुझसे खड़ा नहीं हुआ जाता मां। जल्दी खोलो !” रीता की आँखें वन्द होने लगीं, उसके हाथ निःशक्त होकर जँगले से छूटने लगे। उसे लड़खड़ाते देखकर कुती ने दोनों हाथ थाम लिये, परन्तु खाली गमला, जिसकी कोरों पर रीता पैर रखे खड़ी थी, अपनी जगह से डिग चुका था। रीता गिरने लगी। कुती के हाथ अपनी सीमा तक जँगले से

बाहर निकलकर उसे सँभालने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु गमला उलट चुका था, रीता का दाहिना पैर मोचखा गया। हलकी-सी चीख के साथ वह लटक गयी। पीड़ा से अशक्त उसका नन्हा शरीर अपने भार को सँभाल नहीं पा रहा था। वह गफलत में डूबने लगी। कुंती से न तो उसका हाथ छोड़ने ही बनता था और न सँभालते ही। बेहोश रीता का बोझ उसके हाथों से छूटने लगा। विवश व्याकुल होकर कुंती जोर से चीख उठी—“छेदा ! आया ! अरे कोई बचाओ ! बचाओ !”

कुन्ती का ब्रह्मांड अपने अन्दर-ही-अन्दर बड़ी तेजी से चक्कर काट रहा था। चीख की पृष्ठभूमि में न जाने कितने भाव, विचार और भय क्षणों के एक-एक अणु में व्याप्त होकर प्रलयंकर आंदोलन उठा रहे थे। मन के प्रचण्ड वेग को न सम्हाल सकने के कारण कुंती डूबने लगी।

सात वर्ष के वैवाहिक जीवन ने कुंती को जो पाठ पढ़ाया, वह अपने आदर्शवादी हेडमास्टर पिता की छत्रछाया में रहकर पाये हुए ज्ञान के विपरीत था। कुंती कुशल गृहिणी थी, उसकी साहित्यिक अभिरुचि, सिलाई-बुनाई आदि में दक्षता, व्यवहार-पटुता आदि आरम्भ में दो-तीन वर्षों तक तो उसके पति को भी बहुत पसंद थी, परन्तु बाद उसके यही गुण पति की दृष्टि में अवमृग बन गये। कामिनी खन्ना के लोहे के कारखाने के मैनेजर बनकर कुंती के पति अपनी कार्य-पटुता से मालकिन के अत्यन्त विश्वासपात्र बन गये। कामिनी को अपने व्यापार के लिए निस्संदेह एक ऐसे ही कुशल, विश्वासपात्र व्यक्ति की आवश्यकता थी। शशिकांत देखने में सुन्दर, सजीला और वाक्पटु था। अपने जीवन में कामिनी के प्रवेश कर जाने पर, बड़ा आदमी बनने की इच्छा उसके मन में स्वाभाविक रूप से जाग उठी थी। कामिनी ने यह लाखों का व्यापार अपने पिता से विरासत में पाया था। वह उसे स्वयं चला नहीं सकती। कामिनी के पति बैरिस्टर राधाशमन खन्ना मस्तमौला यारबाश आदमी थे। बिजनेस उनके बस का रोग न था। और बिजनेस का चलते रहना कामिनी के लिए

आवश्यक था, इसलिए शशिकान्त भी उसके लिये आवश्यक था । दोनों की आवश्यकताओं ने मिलकर कुती का सुख-सुहाग उजाड़ दिया ; साथ ही कामिनी के पति राधारमन खन्ना का आत्मविश्वास, मस्ती, उत्साह, सब कुछ मष्ट हो गया । वे नगर, घर सब छोड़ कर न जाने कहाँ चले गये ।

कुती के सामने आने पर कामिनी बारंबार अपनी तुच्छता का अनुभव करती है । शशिकान्त दूसरे की पत्नी का प्रेमी होकर अपनी पत्नी को नियन्त्रण में रखने के लिए बार-बार उतावला हो उठता है । परन्तु स्वयं नियन्त्रित महिला पर वह भला क्या नियन्त्रण रखेगा । अपनी यह विवशता उसे खलती थी । कुन्ती का चरित्र-वैभव दो अपराधी प्रेमियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु था, इसीलिए वह बार-बार दबाई जाती थी ।

जब कामिनी और शशिकान्त का सम्बन्ध घनिष्ठ होने लगा, तभी दुर्भाग्य-वश कुती का दो साल का बच्चा जाता रहा । उसके बाद से अब तक उसे कोई संतान नहीं हुई । अपने सूने दिनों को भरने के लिए उसने आस-पास के छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों को बटोर कर पढ़ाना शुरू कर दिया । धीरे-धीरे दूर के मुहल्लों के गरीब-अमीर बच्चे भी आने लगे । कामिनी की बेटी रीता एक वर्ष पहले, एक दिन अपनी कुछ सहेलियों के साथ आ गयी थी । उसकी मां से दुःख पाते हुए भी कुती रीता की प्यार-भरी बातों से इतनी मुग्ध हुई कि सारा विरोध-भाव ही भूल गया । रीता— मां के निकट स्पर्श और स्नेह की भूखी बच्ची—कुन्ती से प्रेम पाकर उसकी दीवानी हो गयी । कामिनी का उस पर वश नहीं चलता था । वह और जलती थी ।

सात दिनों से रीता मियादी बुखार में पड़ी थी । कुती और उसके बच्चे कल उसे देखने गये थे । दिन में दो-तीन घंटे उसके पास रहे थे । यह समाचार कामिनी को अच्छा नहीं लगा था । इसीलिए कामिनी के प्रेमी, कुती के पति ने कल रात नशे की धुन में उसे कमरे में बन्द कर दिया

था। कुंती बन्द थी और मन-ही-मन डूब रही थी। जँगले के बाहर अंधर में लटकी हुई बेहोश रीता का बोझ उससे सँभल नहीं रहा था।

कंपाउण्ड के बाहर सड़क पर अपनी काठ की दुकान पर बैठे हुए तमोली ने कुंती की चीख सुनी थी। उसे कुंती के वन्दिनी होने का हाल भी मालूम था, और छेदा तथा आया के मैटिनी-शो में जाने का भी; वे दोनों उसी की दुकान से पान खा कर गये थे। चीख सुन सड़क पारकर फाटक से आने के बजाय वह तुरन्त कम्पाउण्ड की दीवाल, लाँघकर दौड़ता हुआ आया। उसने कैदी कुंती को देखा, फिर शट से रीता को सम्हाल लिया। सहायताके लिये आये हुए मनुष्य को देखकर कुंती को ढाँढस बँधा। रीता की कलाइयों से हटकर उसके हाथों ने जँगले पकड़ लिये। कुंती ने संतोष की एक गहरी साँस ली, उसकी आंखें थकान से बंद हो गयीं। पलभर में अपना आपा समेट कर वह बोली—“टैगोर रोड पर.... सौ नम्बर कोठी—।”

“खन्ना साहब की बिटिया हैं, मैं जानता हूँ मां जी। रोज ही तो यहाँ आती हैं। बुखार बड़ा तेज है इन्हें। मेरी जान में कोई पान सौ-साढ़े पान सौ डिगरी होगा इस बखत,” गोद में लेकर कंपाउण्ड की कंकरीली जमीन पर बैठे हुए अंधे तमोली ने रीता के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा।

कुन्ती, जो अब तक अपने को पूरी तौर पर सम्हाल चुकी थी, बोली—“हमारे नौकर न जाने कहाँ ताला बन्द करके चले गये हैं। मैं सो रही थी, कुछ जान न पायी। तुम भैया, एक ताँगा करके लड़की को किसी तरह इसके घर पहुँचा आओ। बड़ा उपकार होगा।”

तमोली बोला—“क्या कहूँ, मेरी दुकान खुली भई हैगी।...अच्छा देखिए कोई-न-कोई इंतजाम करता हूँगा। आप कुछ बिछाने को दे दीजिए—”

बात पूरी होने से पहले ही कुन्ती अपनी चारपाई पर बिछा पतला गद्दा और कंबल वगैरह उठाने लगी । गद्दा बिछ जाने तक, जब तक कि रीता धरती पर पड़ी रही, कुन्ती के वदन में कम्पाउण्ड के कंकड़ चुभते रहे । बुखार की गफलत में निर्जीव-सी पड़ी हुई रीता को देख-देखकर उसे अपनी विवशता पर फिर रोना आने लगा । पल्ले से चटपट आँसू पोंछते हुए वह भरीये गले से बोली—“इसे अच्छी तरह उड़ा दो । और—और धूप के लिये मैं छतरी देती हूँ, जरा चेहरे पर आड़ कर देना । मैं जिंदगी भर तुम्हारा अहसान नहीं भूलूंगी ।”

तमोली रीता को अच्छी तरह लिटाकर, कुन्ती को किसी न-किसी के साथ तांगा भिजवाने का आश्वासन देकर चला गया । इस बार वह पूरा कम्पाउण्ड पारकर फाटक की राह से गया ।

कुन्ती जँगले से लगी, खोई हुई—सी खड़ी रीता को देखती रही । बुखार की गफलत में जब कभी रीता पल भर के लिये आँखें खोलकर देखती, या पानी माँगती तो कुन्ती की वेदना में नई वाढ़ आ जाती थी । आज दिन भर उसे अपना स्त्री होना बुरी तरह खला था । जन्म से ही पुरुष का, परिस्थितियों का दासत्व भोगनेवाली नारी का जीवन भी भला कोई जीवन है ?

“हे राम ! अब की नारी का जन्म न देना ।” प्रार्थना आँसू की बूंदें बनकर राम के निमित्त अर्पित हो गई ।

(२)

नं० १००, टैंगोर रोड पर “किशोरी बिहार” की बरसाती में झुण्ड बांधकर शोर मचाते हुए आठ-दस बच्चे-बच्चियों ने अंदर आती हुई ‘मास्टर व्यूक’ के रोबीले हॉर्न की परवाह न की । मोटर के बरसाती में प्रवेश करते समय बच्चे इधर-उधर होने लगे, मगर एक आठ-नौ बरस की तेज-तर्रार सिंधी बाला ने जमाने की रफ्तार के अनुसार आगे बढ़कर सबको

रोक दिया—“ऐ ! कोई पीछू नहीं हटेंगा । येई खरे रहो सब लोग । हम भी देखेंगे, कैसा हटाते हैं तम लोक को ?”

शशि ने वहीं गाड़ी खड़ी कर दी । कामिनी का गुस्सा आगे बढ़ा । वह शशि के साथ लंच के लिए आई थी । उसका दिमाग न जाने कितनी चिंताओं से परेशान था, बाजार की मंडी की चिन्ता, इधर शशि भी कुछ खिंचे से रहने हैं, राधू (पति) पंद्रह दिन हुए हिमालय से लौट आये हैं । डेढ़ बर्ष पहले कामिनी का घर-वैभव त्याग कर बैरिस्टर राधारमन खन्ना हिमालय चले गए थे । बट्टी केदार, कैलाश, मानसरोवर, अल्मोड़ा, कौसानी, बैजनाथ, पिंडारी आदि में भटक कर, भ्रमण कर, अब लौटे हैं । पुरानी बात ताजे तौर पर कलंक चन्दन से चर्चित हो कर समाज में भीनी-भीनी महक उठी है । खन्ना अपने पुराने बंगले में बसे हुए हैं । कोर्ट जाना भी शुरू कर दिया है । इस बार उन्होंने अपने इस निश्चय का एलान भी कर दिया है कि वे जमकर प्रैक्टिस करेंगे । इस चार्लिस वष के युवक ने सदा से शहर में अच्छा नाम कमा रखा है । जितने मुकदमें खन्ना ने अपनी इतनी उम्र तक जीते हैं, वे उँगलियों के पोरों से तो जरूर बँधे हैं, मगर अपनी ख्याति के क्षेत्र में वे अबाध हैं । खन्ना साहब में फकत एक ही ऐब है--जमकर किसी काम से नहीं बँधे । कभी गहर में अखाड़ों का आन्दोलन बड़े जोर-शोर के साथ चल रहा है, तो कभी बलब में वृज, चुस्की, और लतीफागोई के सिरताज बने हुए हैं, कभी प्रैक्टिस करने का मूड आता है तो आमदनी, बगैर आमदनी वाले अजीब-गरीब मुकदमें लेकर जी जान से उन्ही के हो रहते हैं । शहर के हर वर्ग द्वारा किसी न किसी हद तक वे अपने माने जाते हैं । उनकी यह लोक प्रियता, उनका व्यक्तित्व कामिनी को आज पन्द्रह दिनों से चैन नहीं लेने देता । वह आजकल सोसायटी में लोगों के चेहरों पर अपने लिए बनावटी व्यवहार की गंध महसूस करती है । वह जानती है कि पीछ पीछे उसकी बुराई होती है । इसलिए आजकल बड़े धैर्य और चतुराई के साथ वह अपनी तरफ से

बात पूरी होने से पहले ही कुन्ती अपनी चारपाई पर बिछा पतला गद्दा और कंबल वगैरह उठाने लगी । गद्दा बिछ जाने तक, जब तक कि रीता धरती पर पड़ी रही, कुन्ती के वदन में कम्पाउण्ड के कंकड़ चुभते रहे । बुखार की गफलत में निर्जीव-सी पड़ी हुई रीता को देख-देखकर उसे अपनी विवशता पर फिर रोना आने लगा । पल्ले से चटपट आँसू पोंछते हुए वह भराये गले से बोली—“इसे अच्छी तरह उड़ा दो । और—और धूप के लिये मैं छतरी देती हूँ, जरा चेहरे पर आड़ कर देना । मैं जिंदगी भर तुम्हारा अहसान नहीं भूलूंगी ।”

तमोली रीता को अच्छी तरह लिटाकर, कुन्ती को किसी न-किसी के साथ तांगा भिजवाने का आश्वामन देकर चला गया । इस बार वह पूरा कम्पाउण्ड पारकर फाटक की राह से गया ।

कुन्ती जँगले से लगी, खोई हुई—सी खड़ी रीता को देखती रही । बुखार की गफलत में जब कभी रीता पल भर के लिये आँखें खोलकर देखती, या पानी माँगती तो कुन्ती की वेदना में नई बाढ़ आ जाती थी । आज दिन भर उसे अपना स्त्री होना बुरी तरह खला था । जन्म से ही पुरुष का, परिस्थितियों का दासत्व भोगनेवाली नारी का जीवन भी भला कोई जीवन है ?

“हे राम ! अब की नारी का जन्म न देना ।” प्रार्थना आँसू की बूंदें बनकर राम के निमित्त अर्पित हो गई ।

(२)

नं० १००, टैगोर रोड पर “किशोरी विहार” की बरसाती में झुण्ड बांधकर शोर मचाते हुए आठ-दस बच्चे-बच्चियों ने अंदर आती हुई ‘मास्टर व्यूक’ के रोबीले हॉर्न की परवाह न की । मोटर के बरसाती में प्रवेश करते समय बच्चे इधर-उधर होने लगे, मगर एक आठ-नौ बरस की तेज-तर्रार सिंधी बाला ने जमाने की रफ्तार के अनुसार आगे बढ़कर सबको

रोक दिया—“ऐ ! कोई पीछू नहीं हटेंगा । येई खरे रहो सब लोग । हम भी देखेंगा, कैसा हटाते हैं तम लोक को ?”

शशि ने वहीं गाड़ी खड़ी कर दी । कामिनी का गुस्सा आगे बढ़ा । वह शशि के साथ लंच के लिए आई थी । उसका दिमाग न जाने कितनी चिंताओं से परेशान था, बाजार की मंडी की चिन्ता, इधर शशि भी कुछ खिंचे से रहने हैं, राधू (पति) पंद्रह दिन हुए हिमालय से लौट आये हैं । डेढ़ वर्ष पहले कामिनी का घर-वैभव त्याग कर बैरिस्टर राधारमन खन्ना हिमालय चले गए थे । बट्टी केदार, कैलाश, मानसरोवर, अल्मोड़ा, कौसानी, बैजनाथ, पिंडारी आदि में भटक कर, भ्रमण कर, अब लौटे हैं । पुरानी बात ताजे तौर पर कलंक चन्वन से चर्चित हो कर समाज में भीनी-भीनी महक उठी है । खन्ना अपने पुराने बंगले में बसे हुए हैं । कोर्ट जाना भी शुरू कर दिया है । इस बार उन्होंने अपने इस निश्चय का एलान भी कर दिया है कि वे जमकर प्रैक्टिस करेंगे । इस चार्ल्स वर्ण के युवक ने सदा से शहर में अच्छा नाम कमा रखा है । जितने मुकदमें खन्ना ने अपनी इतनी उम्र तक जीते हैं, वे उँगलियों के पोरों से तो जरूर बँधे हैं, मगर अपनी ख्याति के क्षेत्र में वे अबाध हैं । खन्ना साहब में फकत एक ही ऐब है—जमकर किसी काम से नहीं बँधे । कभी शहर में अखाड़ों का आन्दोलन बड़े जोर-शोर के साथ चल रहा है, तो कभी वलब में वृज, चुस्की, और लतीफागोई के सिरताज बने हुए हैं, कभी प्रैक्टिस करने का मूड आता है तो आमदनी, बगैर आमदनी वाले अजीब-गरीब मुकदमें लेकर जी जान से उन्हीं के हो रहते हैं । शहर के हर वर्ग द्वारा किसी न किसी हद तक वे अपने माने जाते हैं । उनकी यह लोक प्रियता, उनका व्यक्तित्व कामिनी को आज पन्द्रह दिनों से चैन नहीं लेने देता । वह आजकल सोसायटी में लोगों के चेहरों पर अपने लिए बनावटी व्यवहार की गंध महसूस करती है । वह जानती है कि पीछे पीछे उसकी बुराई होती है । इसलिए आजकल बड़े धैर्य और चतुराई के साथ वह अपनी तरफ से

पार्टियाँ और पिकनिक करा रही है। शशि को हठ पूर्वक वह इस समय हरदम अपने साथ ही रखती है। कामिनी समाज में अपनी यह आन कम नहीं करना चाहती कि उसने अपने पति को त्याग कर अन्याय किया है। वह अपने और शशि के रिश्ते को परम पवित्र, 'विजनेस लाइक' घोषित कर अपने पति द्वारा लगाये गये मिथ्या कलंक को उनका अत्याचार मानकर उन्हें 'कब्भी-कब्भी' भी क्षमा करने को तैयार नहीं। (यद्यपि उसके पति ने कभी भी क्षमा मांगने की इच्छा नहीं प्रकट की, और न वे किसी के सामने कामिनी को कलंकित ही करते हैं।) इतनी चिंताओं के साथ-साथ कामिनी को इस समय रीता के बुखार की भी चिंता है। पोर्टिको में बच्चों को खड़े देख, कार से उतरते हुए कामिनी ने झुझला कर शशि से कहा—जान पड़ता है, आप की बेगम साहबा आज भी यहाँ तशरीफ लाई हैं।”

मोटर की चाभी बन्द करते हुए शशि ने उत्तर दिया, “नहीं। आज वह नहीं आ सकती।”

मालकिन को देखकर बच्चों को बरामदे में खड़े होकर डांटने वाला माली भी अब अधिक सक्रिय और सभ्य हो, पोर्टिको में आकर उन्हें प्यार से समझाने लगा था कि, “बच्चों, अब सोर नहीं करते। घर जाओ—अच्छा ! रीता घर में नहीं है।”

कामिनी ने थ्योरियाँ चढ़ाकर पूछा, “ये सब यहाँ क्यों आये हैं ?”

कुछ बेरा ने बतलाया, कुछ लड़कों के शोर से जाना, उसके बाद फिर कुछ बेरा से मालूम हुआ—इस तरह बहुत कुछ जानकर उसे बेहद गुस्सा चढ़ आया। रीता भरे बुखार में घर से न जाने कहाँ चली गई, और नालायक नौकरों को जरा भी खबर नहीं हुई ? वह सबको निकाल कर बाहर करेगी। चौकीदार, आया बेरा, शिवगुलाम—सब रीता बेबी को हूँढ़ने गये हैं, यह जान कर उसे संतोष नहीं हुआ। रीता का यों चला

जाना, उसके पिता के शहर में आने के अवसर पर, सामाजिक दृष्टि से कामिनी के लिए बड़ी बदनामी का वायम हो सकता है—यह भय कामिनी के क्रोध को भट्ठी की तरह भड़का रहा था। बच्चों के शोर ने उस आग में हवा का काम किया। उसने 'चिड़-चिड़' जवान चलाने वाली सिंघी लड़की को तमाचे जड़ दिये और बच्चों की 'मांजी' (कुन्नी) को भी गालियाँ दी। मार खा तथा मांजी के लिए बुरी बात गुन कर सिंघी वाला का जोश दीवाना हो गया; सब बच्चे उद्धृत हो गये। उन्होंने अपना निश्चय गुना दिया कि वे रीता से मिलकर जायेंगे; मांजी से मिलकर जायेंगे। उन्हें पक्का विश्वास था कि मांजी कल ताला बन्द करके यहाँ आई थी। कल तो मांजी ने उन्हें रीता से मिला दिया था। और रीता उन्हें देख कर अच्छी हो गई थी। और उसने उन्हें आज भी बुलाया था। इसलिए आज भी रीता से मिल कर जायेंगे, उसे अन्त करके जायेंगे।

कामिनी का गुस्सा शिखर पर चढ़ कर भी जब बच्चों के मनोबल की ऊँचाई तक न पहुँच सका तब शशि की व्यवसायिक चतुराई आगे बढ़ी। बच्चे उन्हें अपने मांजी के पति के रूप में पहचानते थे। उन्होंने माली के हाथ में दस रुपये का नोट रखकर सामने वाले रेस्तराँ से बच्चों को विष्कुट और चाकलेट दिलवाने का आदेश दिया। प्रस्ताव का असर पड़ा। फिर भी सिंघी वाला और उनकी हमउम्र दो-एक बच्चियाँ मांजी और रीता से मिलने का अग्रह करती ही रही। शशि ने उन्हें समझाया कि उनकी मांजी घर पर ही है, और रीता भी उन्हीं के पास है। ताला लगाने का कारण भी उन्होंने बतलाया कि मांजी ने ही बाहर बन्द करवाया है, जिससे तुम लोग वहाँ जा कर शोर न मचा सको।

“हम कोई अपनी मांजी के दुश्मन थोड़ा ही हैंगा जो उनकी तकल्लिफ में शोर मचायेंगा। आप उनकी सजाने का वास्ते बन्द कर आये

हैं। आप ताला खोल दीजिए।” सिन्धी बाला बड़े तैश में आँखें निकाल कर बोली। उसकी आँखों में शशिकांत मेहता के लिए प्रकट शत्रुता का भाव था। आस-पास के मुहल्लों में, दूर-दूर तक—जहाँ के बच्चे मांजी की मुफ्त पाठशाला में पढ़ने आते हैं—बच्चों और उनके अभिभावकों के बीच में मांजी की सरलता, उदारता और अपार ममता की कहानी के साथ-साथ यह बात भी प्रसिद्ध थी कि मांजी के बाबूजी उन्हें बहुत दुःख देते हैं, वे किसी दूसरी औरत से फँगे हैं। नौ-दस वर्ष के बच्चे बहुत कुछ समझ लेते हैं। इसलिए कुन्ती की पाठशाला की बड़ी लड़कियाँ बाबूजी से मन ही मन शत्रुता रखती थी। रीता की माँ के साथ बाबूजी को देखकर सिन्धी बाला को अनायास ही ‘एक रहस्यमय’ रहस्य का आभास मिल गया।

उसकी कठोर मुख-मुद्रा, विपैले बाणों से आँखें और उसका खुला विद्रोह शशिकान्त मेहता के मन की चतुराई को चुभने लगा। सामना करना बेकार है, यह समझकर उन्होंने अपनी झुझलाहट समेटते हुए कामनी की ओर मुड़कर कहा—“चलो पहले रीता को ले आयें। वह वहीं गई है।”

‘मास्टर व्यूक’ फिर सड़कों पर दौड़ने लगी।

कामिनी ने अपने सिर का रूमाल ठीक करते हुए, नजर सामने रख कर कहा—“वही वह राधू की तरफ न चली गयी हो।”

“आई डोण्ट थिक सो।” शशि बोले—“उसे क्या किसी ने बतलाया है कि वह आ गए हैं?”

“मेरे खयाल में तो शायद उसे नहीं मालूम। लेकिन शायद, शायद आपकी परम उपकारी बेगम साहिबा ने—”

बात पूरी होने के पहले ही शशि ने कहा—“हजार हाथ वह मेरे यहाँ ही गई है।”

इसके बाद एक मिनट तक दोनों चुप रहे। फिर कामिनी ने बा. छेड़ी, कहा— ‘आपकी बेगम साहबा की युनिवर्सिटी तो खासी पोलिटि. कल सेंटर बन गयी है। लड़कियाँ जवान लड़ाना सीख गयी हैं। अच्छी शिक्षा मिलती है।’

शशिकांत नाटकीय ढंग से गम्भीर बने हुए मोटर ड्राइव करते रहे। कामिनी फिर बोली—“रीता पर जाने उसने कौन-सा जादू कर दिया है कि मैं तो हैरान हूँ। तुम तो जानते ही हो, मैं अपनी रीतू को कितना प्यार करती हूँ। मगर मैंने कई बार यह आजमा कर देखा है, शशि, तुम यकीन नहीं मानोगे कि जब तुम्हारे यहाँ से आती है, तो उस पर एक अजीब किस्म का नशा छाया रहता है। मैंने उसे खूब गौर से देखा है कि जैसे उसे कोई हिप्नोटाइज करके उसे ‘उस घर’ की तरफ खींच ले जाता है। तुम्हारी वाइफ ने जरूर कोई जादू-टोना सिद्ध किया है, वरना क्या बात है कि उसके पास अचानक ही इतने बच्चे खिंचकर आने लगे? मेरा ख्याल है कि कोई पचास-साठ बच्चे तो आते ही होंगे तुम्हारे यहाँ। क्यों?”

“हूँ।” शशि ने छोटा जवाब दे दिया। मुखमुद्रा उसी तरह गम्भीर बनी रही। कामिनी फिर कहने लगी—“मैं शर्त लगाकर कहती हूँ कि उसके पास जरूर कोई जंतर-मंतर है, वरना देखो शशि, कितने लाज्जुब की बात है कि हमारे महिला-समाज में गरीब बच्चों की नर्सरी खोलने के लिए कितना जबर्दस्त प्रस्ताव पास हुआ था। मैं, मिसिज भगत, मिसिज मसालदान, सकीना, परकाश सब ने मिलकर कितनी जबर्दस्त कोशिश की, कितनी दौड़-धूप की . . . और न तो हमारे पास पैसे की कमी, न काबलियत की, मगर फिर भी हम नर्सरी कायम न कर सके। और तुम्हारी बेगम ने दो तीन साल के अन्दर ही अपनी पब्लिसिटी का शानदार किला खड़ा कर लिया! न

अकल, न शऊर, न कोई ऊँचा शिक्षा, मगर चतुराई इसको कहते हैं।”

इसके बाद कामिनी ने बतलाया कि गली गहल्लों की दकियानुस औरतें चाहे और सब तरह से फूट हों, मगर जादू-टोने में दडी पट्ट होती हैं। यह भी कहा कि ऐसी औरतें कभी जलन के कारण जधि और कामिनी को नुसमान भी पहुँचा सकती हैं। ऐसी औरतों के पास मरण, मोहन, वशीकरण, उच्छादन—न जाने क्या-क्या तरीके होते हैं, जिन पर कामिनी को ‘साइंटिफिक’ तरीके से पक्का विश्वास है। कामिनी अपने अनुभव सुनाने लगी।

मास्टर बूक मैजिले-मकसूद के बटुन नजरीक पहुँच गई थी।

(३)

तमोली फाटक अथवुला छोड़कर ही चला गया था, इसलिए गावें बेरोक टोक कम्पाउण्ड में आ गयी। बँगले के फूलपात-वाली सजावट को अपना आहार बनाती हुई एक गाय पिछवाड़े, कुन्ती के कमरे की तरफ पहुँच गयी। उसे देखकर कुती की चिंता में एक अदद और जुडा। उसे भय हुआ कि कहीं वह रीता की तरफ न बढ आय। जब एक ओर गाय भी उधर आ पहुँची तो कुती के मन से सारे समाधान बिश हो गये। भरसक वह हट-हट चिल्लाती जाती है और फलेजा धड़कता जाता है। रीता देर से शांत पड़ी है—कुनमुनाई तक नहीं। निरधार होने की भावना ओर चोकनोन में एक ध्यान उधर भी जाता है, कहीं कुछ हो तो नहीं....? शंका आते ही अन्तर तड़प उठा—“नहीं! नहीं!!”—अन्तर का वह वेग स्वर ने पाया, “हट! हट!!”

जँगले की छड़ों से मुट्ठियाँ कस गयीं; मन की प्रबल व्यग्रता से उसके हाथ काँपे जा रहे थे, चेहरे की एक-एक नस तनी जा

रही थी । जंगले के अन्दर जैसे उसका शरीर रुद्ध था, वैसे ही शरीर के अन्दर उसके प्राण । दोनों ही बाहर निकलने के लिये एक साथ तड़प रहे थे — एक भी नहीं निकल पाता था ।

मास्टर ब्लूक का हार्न अधातुले फाटक पर बज उठा—फिर बजा—फिर देर तक बजा । जब फाटक खोलने के लिए अन्दर से कोई नहीं आया तो नौकरों को गाली देते हुए फाटक खोलने के लिए शशि स्वयं उतरे । कम्पाउण्ड में पीछे के हिस्से से गाय आती देखी, गेदे की नष्ट हुई थारियाँ देखी ; उन्हें गुस्से का नशा चढ़ने लगा । भन्नाते हुए आकर कार स्टार्ट की और पोर्टिको में आये ।

कामिनी और शशि ने कार से उतरकर देखा, दफ्तरवाले कमरे के दरवाजों पर मकान का ताला बन्द था । शशिकांत अपना आपा खो बैठे, और कामिनी के मातृ हृदय को भी एक बार धक-से लगा कि रीता आखिर गयी, तो गयी कहाँ ?

कोई उपाय न देख शशिकांत पीछे, अपने कौदी से रीता के सम्बन्ध में पूछने चले । कामिनी न गयी, बरामदे में ही खड़ी रही । जिधर गाय को देखा था, उधर से न जाकर शशिकांत दूसरी तरफ से पीछे गए । सामने जमीन पर विस्तर बिछा हुआ देखा, छतरी की ओट के कारण वे रीता का मुख न देख पाये । निकट आने पर शशिकांत ने कुती के वेदनावस्त चेहरे पर उचटती नजरे डालकर रीता को बड़ी व्यस्तता के साथ देखा । पति को रीता के पास देखकर कुती के निर्जीव चेहरे पर संतोष की मंदी सी चमक उसी तरह झलकी, जैसे बियाबान में दूर पर दिया टिमटिमाता है । रीता के तिर पर हाथ रखकर शशिकांत ने बुखार की तेजी महसूस की, फिर नजरे दिगाड़कर कुती से पूछा—“बाहर का ताला किसने बन्द किया ? आया और छेदा कहाँ गये ?”

“जिसके नौकर हों वहीं जाने ।” कुती ने पति के चढ़े तेवरों की अपेक्षा कर कहा और सामने से हट गयी ।

शशिकांत की हिंसा पेंचताब खाने लगी । तैश में आकर खिड़की के नीचे लटके हुए खाली गमले को उठाकर पूरी शक्ति के साथ गाय पर उन्होंने दे मारा । गाय तिलमिला कर भागी । शशिकांत तेजी से चलकर सामनेवाले बरामदे में आये । कामिनी अपने नौकर को फटकार रही थी जो रीता को ढूँढता हुआ उसी समय वहाँ पहुँचा था । शशि ने बतलाया कि रीता बखार में बेहोश पड़ी है । कामिनी विकल हो दौड़ पड़ी, शिवगुलाम उसके पीछे-पीछे तेजी से चलने लगा ।

अपनी बेटी को बेहोश पड़ी देखकर कामिनी का मातृत्व करुणा से हिल उठा, किन्तु अपने विकृत संस्कारवश वह सहज स्वाभाविक अनुभूति पर नाटकीयता का गहरा रंग चढ़ाकर, मेरी लाइली, डार्लिंग, मेरी बच्ची वगैरह प्रलाप करने लगी । आत्मजा के प्रति उमड़ती हुई करुणा को वह घृणा की कीचड़ में सानकर कुन्ती पर उछाल ने लगी ।

शशिकांत सामने से चले आ रहे थे । कुन्ती पर एक सख्त नजर डालकर कामिनी ने शशि से कहा—“यह डाइन है—” जरूर डाइन है ।”

शिवगुलाम रीता को लेकर आगे बढ़ रहा था । कुन्ती के कानों में आवाज आई, “मा !”—और सामना सूना हो गया । कामिनी और शशि उसकी दृष्टि के सामने होते हुए भी नहीं थे ।

“मैं इसका स्कूल बन्द कर दूंगा ।”

“मैं इसके मातृत्व को कुचल दूंगा ।” कुन्ती के हृदय में पति की बात इस तरह लगी । मरु भूमि में ज्यों कहीं से बाढ़ का पानी आ दौड़े, यों कुन्ती के मन में तूफान आया । रीता किसी की भी हो, उसके पास आनेवाले बच्चों की माताएँ भले ही अन्य हों, अनेक हों,

पर कुंती इन सबकी मां है। इनके द्वारा ही कुंती के जीवन में रस आया है। कुंती इन्हें हरगिज नहीं छोड़ेगी। बच्चों को उससे कोई नहीं छुड़ा सकता—कोई नहीं—कामिनी और शशि भी नहीं। बढ़ते हुए भविष्य के आगे, न्याय और प्रेम के आगे, भूत और वर्तमान का कोई सम्बन्ध बाधक बनकर अब उसके सामने नहीं आ सकता। आज के सम्बन्ध नकली हैं, उनमें झूठ भर गया है। वह झूठी नहीं बनेगी। वह इन बच्चों की मां है—वह सारे जगत् के बच्चों की मां है। झूठे सीखचों में बन्द कर उसे अब नहीं रखा जा सकता।

“दरवाजे का ताला खोलते जाओ।”—कुंती ने कामिनी के साथ जाते हुए पति से कड़क कर कहा—“खोलते जाओ ! नहीं तो मैं चीख-चीखकर चारों ओर से भलेमानसों को इकट्ठा कर लूंगी। मैं अब इस कैदखाने में नहीं रहूँगी—नहीं—नहीं, हरगिज नहीं।”

कुंती के आँसू अब न मान सके। वह अपने लिये रोई, उसके अपनेपन में न जाने कितनी विशालता बाँदेनी बनी हुई अपनी स्वतंत्रता के लिए रोई थी। परन्तु यह आँसू सामंती महाजनी परम्पराओं के दासीत्व-पत्नीत्व के प्रतीक नहीं, मातृत्व की अनादि-अनन्त शक्ति का प्रतीक बन कर झलके थे।

शशिकांत की हिंसा पेंचताब खाने लगी । तैश में आकर खिड़की के नीचे लटके हुए खाली गमले को उठाकर पूरी शक्ति के साथ ग.य पर उन्होंने दे मारा । गाय तिलमिला कर भागी । शशिकांत तेजी से चलकर सामनेवाले बरामदे में आये । कामिनी अपने नौकर को फटकार रही थी जो रीता को ढूँढता हुआ उसी समय वहाँ पहुँचा था । शशि ने बतलाया कि रीता बुखार में बेहोश पड़ी है । कामिनी विकल हो दौड़ पड़ी, शिवगुलाम उसके पीछे-पीछे तेजी से चलने लगा ।

अपनी बेटी को बेहोश पड़ी देखकर कामिनी का मातृत्व करुणा से हिल उठा, किन्तु अपने विकृत संस्कारवश वह सहज स्वाभाविक अनुभूति पर नाटकीयता का गहरा रंग चढ़ाकर, मेरी लाइली, डार्लिंग, मेरी बच्ची वगैरह प्रलाप करने लगी । आत्मजा के प्रति उमड़ती हुई करुणा को वह घृणा की कीचड़ में सानकर कुन्ती पर उछाल ने लगी ।

शशिकांत सामने से चले आ रहे थे । कुती पर एक सख्त नजर डालकर कामिनी ने शशि से कहा—“यह डाइन है— ।” जरूर डाइन है ।”

शिवगुलाम रीता को लेकर आगे बढ़ रहा था । कुती के कानों में आवाज आई, “मा ! ”—और सामना सूना हो गया । कामिनी और शशि उसकी दृष्टि के सामने होते हुए भी नहीं थे ।

“मैं इसका स्कूल बन्द कर दूंगा ।”

“मैं इसके मातृत्व को कुचल दूंगा ।” कुन्ती के हृदय में पति की बात इस तरह लगी । मरु भूमि में ज्यों कहीं से बाढ़ का पानी आ दौड़े, यों कुन्ती के मन में तूफान आया । रीता किसी की भी हो, उसके पास आनेवाले बच्चों की माताएँ भले ही अन्य हों, अनेक हों,

पर कुंती इन सबकी मां है। इनके द्वारा ही कुंती के जीवन में रस आया है। कुंती इन्हें हरगिज नहीं छोड़ेगी। बच्चों को उससे कोई नहीं छुड़ा सकता—कोई नहीं—कामिनी और शशि भी नहीं। बढ़ते हुए भविष्य के आगे, न्याय और प्रेम के आगे, भूत और वर्तमान का कोई सम्बन्ध बाधक बनकर अब उसके सामने नहीं आ सकता। आज के सम्बन्ध नकली हैं, उनमें झूठ भर गया है। वह झूठी नहीं बनेगी। वह इन बच्चों की मां है—वह सारे जगत् के बच्चों की मां है। झूठे सीखच्चों में बन्द कर उसे अब नहीं रखा जा सकता।

“दरवाजे का ताला खोलते जाओ।”—कुंती ने कामिनी के साथ जाते हुए पति से कड़क कर कहा—“खोलते जाओ ! नहीं तो मैं चीख-चीखकर चारों ओर से भलेमानसों को इकट्ठा कर लूंगी। मैं अब इस कैदखाने में नहीं रहूँगी—नहीं—नहीं, हरगिज नहीं।”

कुंती के आँसू अब न मान सके। वह अपने लिये रोई, उसके अपनेपन में न जाने कितनी विशालता बाँदेनी बनी हुई अपनी स्वतंत्रता के लिए रोई थी। परन्तु यह आँसू सामंती महाजनी परम्पराओं के दासीत्व-पत्नीत्व के प्रतीक नहीं, मातृत्व की अनादि-अनन्त शक्ति का प्रतीक बन कर झलके थे।

क्रिस्सा बी सियासत भठियारिन और एडीटर बुल्लेशाह का

जाड़े की रात । नया जंगल । एक डाल पर तोता, एक डाल पर मैना । हवा जो सनसन चली तो दोनों कांप उठे । मैना अपने परों को समेटकर बोली कि अय तोते, तू भी परदेशी, मैं भी दूसरे देश की । न यहाँ तेरा आशियाना, और न मेरा बसेरा । क्रिस्मत ने हमारा घर-बार छुड़ाया, लेकिन मूसीबत ने हमें साथी बनाया, इस लिए अय तोते, अब तू कोई जतन कर कि जिससे रात कटे; कोई क्रिस्सा छेड़ कि मन दूसरा हो ।

तोता बोला कि अय मैना, मुन ! मैं देश-परदेश उड़ा और सराय-फ़ानी देखी । उसके भठियारे का नाम इलाही, और भठियारिन हैं बी सियासत, जो ज़िंदगी की सेज से उतरने का नाम ही नहीं लेतीं । उन्हें ढली जवानी में नयी नवेली बनने का वह शौक़ चरपा है कि अल्लह-अल्लह ! उनके साज-सिंंगार की फ़रमाइशों ने मियाँ इलाही की सराय-फ़ानी को सुनार की दुकान बना रखा है । चारों ओर भठियाँ धधक रही हैं, दिमाग़ का सोना गलाया जा रहा है । हर तरफ़ ठक-ठक का शोर इस क़दर कि भठियारे मियाँ इलाही के हुक्के की गुड़गुड़ाहट ही दब गयी । गाहकों की तौबातिल्ला और शिकायतों से सरायफ़ानी का छप्पर उड़ने लगा । मगर ऐ मैना, अजब ढंग हैं बी सियासत के कि

कल का दयाल ही नहीं; उन्हें तो आज ही में कल नहीं पड़ती । घड़ी में सुनारों की छाती पर सवार और दम-दम में जाम-आज़ादी का दौर । ढली जवानी का बगूला इस झोर से भड़का कि कुन्नालेआलम बन गई । और अब तो जानेजहाँ इस बत पर मचली हैं कि हम आग से आग को बुझायेंगे ।

भनक एंडीटर बुल्लेशाह को पड़ी । अकल की फ़रीरी पर शबल की अमीरी अपनाई, खुदा के नूर पर मेंहदी रचाई, जुल्फों में तेल डाला, ओर फिर जो सुरमीली नज़रों को तिरछा घुमा के फेंक दिया तो जहान में आग लग गई । सीना-चाक, दहन फाड़कर बुल्लेशाह चिल्लाए कि ऐ बी सियासत, जाने-मन !

उलफ़त का जब मज़ा है
कि दोनों हों बेकरार,
दोनों तरफ हो आग
बराबर लगी हुई ।
—लो, आओ, बुझाओ !

गमक के उठी बी सियासत, भठियारे से बोली, ले मर्दुए, अपनी दुनिया सम्हाल, मैं तो चली ।

वन ठन के चली मैं पी की गली
सुए काहे को शोर मचावत है ।
हरजाई बनी, तोसे नाहीं बनी,
तू तो दीन की बीन वजावत है !

—ऐ निगोड़े, मैं ठहरी सियासत, मुझे तेरे धरम-ईमान से क्या काम ? तेरे गाहकों के चैन-आराम से क्या निस्वत ? मुझे बग़लें गरमाने में मज़ा आता है, आज इसकी बनी, कल उसकी हुई ।

भठियारा बोला कि ऐ बीबी, शरीफ़ों का चलन चल, नेकबस्त बन ।

बदी में मज़ा नहीं प्यारी, रग-रग, पोर-पोर में चुभन होगी, दामन चाक-चाक हो जायगा ।

मैना ने पूछा, तब !

तोता बोला : तब खूने-आशिक की हिना से रंगी उँगलियों को नचाकर, भँवें मटका, मुंह बिचकाकर बोलीं बी सियासत कि ऐ मुए दाढीजार, तुझे शायर का कलाम याद नहीं, कि गुलों से ख़ार बेहतर हैं, जो दामन थाम लेते हैं । फिर तेरे पास धरा ही क्या है ? तेरे नाम की माला जपने से क्या हासिल ? उधर बुल्लेशाह के लाखों मुगीद हैं, हिदी में, उर्दू में, तमिल, गुजराती, मरहठी, बंगाली में, चीनी, जापानी में, अंग्रेजी में, रूसी, फ्रांसीसी में, गुर्जे कि हर इबान में बुलबुले फूटते हैं । शाह का मंतर ज़माने के सिर पर चढ़कर बोलता है । मुक़ेद काग़ज़ पर स्याह हुरूफ़ों से ढलकर उनकी आवाज़ बुलन्द होती है । जिस पर उनकी मेहर की नज़र हो जाती है, वह तिल से ताड़ बन जाता है, और जिससे उनकी नज़र फिर जाती है वह सूरज की तरह रोशन होकर भी बुझा चिराग़ मन्म जाता है । ऐसे सनम के गले में बाहें डालकर मैं जो एक आह करूँ तो गली-कूचों में शोर मच जाय, जो चाह करूँ वह पूरी हो, जो गुनाह करूँ वह छिप जाय, मेरी बाहवाही हो, मेरी धूम मच जाय । इसलिए ऐ निगोड़े मुए भठियारे, मैं तुझे छोड़ चली, मुह मोड़ चली—

जाके घर-घर में आग लगाऊँगी मैं ।

तेरे ख़ल्क को ख़ाक़ बनाऊँगी मैं ॥

कहके बी सियासत ने अपनी ओढ़नी सम्हाली—तिरंगी छटा छहरी, सातों सितारे चमके, हिलाले ईद उगा, पट्टियाँ और धारियाँ लहराईं ; हँसिया-हथौड़ा ठमका—नज़र जिसकी भी पड़ी उसी ने हाय भरी, कसके कलेजे को थामा ; दुनिया दीवानी बनी, बी सियासत की ओढ़नी के गुन गाने लगी ।

बोली मैना कि अय तोते, तेरा क्रिस्ता आला है, तर्जेबयाँ निराला

है; मगर यह क्या बात है कि हर बार बेचारी ओरतजात पर है ? अरे कुछ तो इन्साफ़ कर । मर्दों के कुसूर को तू मर्द होने की वजह से मत माफ़ कर । कुछ तो बता कि बुल्लेशाह ने क्या किया ?

तोता बोला कि अय मेरी प्यारी मैना, उतावली न दिखा, बेचैन न हो । सुन—

बोला बुल्लेशाह कि ऐ परी पैकर । फ़ोटू तुम्हारी देखकर दिल पर हुआ असर । मैं भूल गया गैली प्रूफ़, प्रेस का मैटर । अब तो रहम कर । मैं तोड़ता हूँ आज से नाता जहान से, कलचर से, लिटरैचर से, दीनो ईमान से । तेरे ही गुन मैं गाऊँगा ऐ बीबी सियासत । ऊँठों ने झुटा दूग़ा मैं कुल अपनी रियासत । तू चल के बैठ तो ज़रा टाइपों के केस में; हर फ़ान्ट में, पैका में, हर पुरजे के प्रेस में । फिर देख मेरे जौहर कि तेरे शौहर को नाकों चने न चबवा दू तो मेरा नाम बुल्लेशाह नहीं, झब्बू !

सुन के बी सियासत मुसकराई, बुलाऊ की लटकन ने बल खाया, चितवन ने बाँका वार किया, बुल्लेशाह के गले में बाँहें ढालकर बोली;

हमें तो अब किसी पहलू नहीं आराम आता है ।

तुम्हीं इस दिल को ले लो ये तुम्हारे काम आता है ।

अभी तो इन्तिदाये इक्क है, अय हज़रते 'फ़रहत'

तुम्हारे सामने क्या देखना, अन्जाम आता है ।

मगर अंजाम की परवाह किसको है । तोते ने कहा कि अय मैना, यह हौसला मर्द का ही होता है, जिसने तिरछी नज़र से वार किया उस पर दिलो जान सब निसार किया । एडीटर बुल्लेशाह की एड़ी जो तर हुई तो जोशेजुनू में दहन फाड़कर चीत्ते कि ऐ मेरी प्यारी, तू देख मेरा करिश्मा । यों कहके लगाया नाक पे चश्मा ओर कलम को म्यान से निकाल लिया । पच्छिम में बैठे और पूरब में टांगें फैलाई, उत्तर की ओर मुंह किया और दक्खिन में आग लगाई । यों चारों कोने जीतकर बोले वो एडीटर, अब तेरे लिए क्या कहूँ, बोल ऐ मेरी जिगर ।

तू कह तो इलाही की मैं मूँछें उखाड़ लूँ । दुनिया सरायफानी को पल मे उजाड़ दूँ । सूरज की राह रोक करूँ चाँद को फना । दरिया को सोख लूँ कि करूँ आग को मना । तबि मैं तेरे कर दिये प्रेसट्रस्ट-रायटर । तेरे गुलाम हो गये मेरे रिपोर्टर ।

यह मुनवर सियासत बी भठियारिन मुस्कराई । पनडब्बा निकाला, दो बीड़े आप जमाये और जूठन बुल्लेसाह को इनायत की । बुल्लेसाह के सात पुरखे ओर आनेवाली सात पीढ़ियाँ निहाल हो गयीं । फिर कुलम चूम के बी सियासत बोली नि ऐ मेरे पालतू बन्दर । बस मेरे इशारे पर चला कर । मैं जो कहूँ वही लिखा कर । गर सच को कहूँ झूठ, तो तू झूठ बोल दे । हऊ के खिलाफ बोल—बस जिहाद बोल दे । मैंने भठियारे इलाही मे बदला लेने की ठानी है । सरायफानी के मुसाफिरों को मिसमार करने की मन्नत मानी है । तवाहीज के बर्फ यह साबित करते हैं कि सराय इलाही की है, औ' मुसाफिरों की बस्ती है । मगर मेरी निगाह में औजात हऊ की सस्ती है । मैं दौलत की बहन हूँ, उसकी अजीज हूँ । सोने की आब देख बनी मैं कनीज हूँ । इसलिए ऐ प्यारे बुल्ले, तू फूट, हजार बार फूट । झूठ से अपने तन को काला कर । बहन दौलत का बोलवाला कर । मैं हऊ का नाम लेके नाहऊ करूँगी शोर । मगर इस शोर से तू सच न समझना मेरे भोले वालम । यह मेरी चाल है, मेरी अदा है, मेरा चकमा है । मेरा दफ्तर तो बस झूठ का सहकमा है । दुनिया सरायफानी के गरीब मुसाफिरों के लिए मैं पकवान बनाऊँगी, मगर उन्हें दौलत के चहेतों को खिलाऊँगी । रिपब्लिक का नाच नाचूगी, मगर पब्लिक को अंगूठा दिखाऊँगी । दौलत का हो गुलाम दुनिया का हर वशर । बस आज सियासत को है कोरी यही फिकर । तू एक काम कर । जो मेरी राह के रोड़े हैं उनको तबाह कर । कल्चर और लिटरेचर, आर्ट औ' साइन्स, हिस्ट्री और हऊ का फ़लसफ़ा—ये लुए मेरी पोल खोलते हैं । तू इनकी कमर तोड़ दे ऐ मेरे प्यारे बुल्ले, इनकी खबरें न

छात्र, इनकी आँख फोड़ दे। इनमें से जो मेरे गुलाम बन जायँ, उनकी वाह-वाह कर; बाज़ी को तवाह कर।

मैना बोली कि ऐ तोते, इसके बाद क्या हुआ। तोते ने आह भर के कहा कि इसके बाद तो होना था वही हुआ। बी सियासत ने कमर लचकाकर तेमून्ज़र का वार किया, और झुककर बुल्लेशाह को चूम लिया।

मैना ने फिर पूछा कि तब बुल्लेशाह ने क्या किया ?

तोते ने जवाब दिया कि बेचारा बुल्ला जवानी का मारा करता क्या! सियासत के जीवन से मज़मूर हुआ। हम से बहुत दूर हुआ। ईमान उनका चूर हुआ।

यह कहकर तोते ने एक ठंडी साँस ली, और दरवाज़ की डाल पर अपनी गर्दन डाल दी। मैना से उरगी यह हालत देखी न गई। फुदककर उसके पास आई, चोंच से चोंच मिलाई और बोली कि न रो मेरे साथी, न रो मेरे हमदम। हफ़ का दर्जा ऊँचा है। मर्राय इलाही की है, मुसाफ़िरों की वस्ती है। बी सियासत और बुल्ले की ये दोस्ती निहायत सस्ती है। वक़्त आयेगा, जब अकल आयेगी। दुनिया में फिर से वहार आयेगी। ये देख, भोर हुआ। परिन्नों का शोर हुआ। आओ, हम इनके साथ हों। एक होकर आवाज़ बुलन्द करें। बी सियासत और बुल्ले-शाह की हस्ती क्या है जो हमारी आवाज़ को दबा सके।

यह कहके मैना ने तोते को उठाया नया प्रीन दिया। फिर दोनों पंख फैलाकर ऊँचे आस्मान में तेज़ी से उड़ चले।

मल्का टूरिया का बेटा

“साला, बूढ़ा ! न काम का न धाम का । जब देखो यहीं आकर गड़ जाता है । मौत भी नहीं आती साले को । चल !” कहते हुए राधेबिहारी ने अपने चौरासी बरस के बूढ़े बाबा चौबे बनारसीदास को कस-कसकर और दो घूँसे लगाए । बूढ़ा अपनी झुर्रियों में काँप उठा । उसकी गिड़गिड़ाहट ने मल्का टूरिया का गुस्सा तेज किया । वह राधेबिहारी को सुनाकर कहने लगी—“आग लग जाए मुए ऐसे हाथों में । बाप के बाप पर यों हाथ उठाते हुए न लाज न सरम निगोड़ी—ऊपर से गालियाँ सुनाते हैं । नासपीटे मुंह झौंसे कहीं के ।”

राधेबिहारी बूढ़े बाबा का हाथ पकड़े घसोढ़े लिए जा रहा था । हाते के दस पाँच और लोग आसपास खड़े थे । उनके सामने मल्का टूरिया की गालियाँ खाकर राधेबिहारी की कुलीनता को नशा बढ़ा । तेजी से पीछे पलटकर बोली—“जबान सँभालकर बात कर । मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो तेरी धौंस खाते हैं । मारे जूते के अकल ठिकाने लगा दूँगा ।”

मल्का टूरिया अपने चबुतरे से उतरकर आई और सीधे जाकर राधेबिहारी की कमीज का कालर ही दबोचा ।

“जूतों से पीटेगा नासपीटा । ले आ हिम्मत हो तो ।”

मल्का टूरिया एक साँस में सौ बातें सुना गयीं और राधेबिहारी का कालर अपने तेहे और जोश में आकर उन्होंने इस कदर धर-धर कर

खींचा कि बाबू साहब के पुनतर ढीले पड़ गए। बड़बड़ाते हुए मल्का दुरिया को हाते से निकालने की धमकी देते हुए चले गए।

चौबे का हाता इस वनत राधेबिहारी के ही कब्जे में था। सन् १८६५ में राधेबिहारी के बाबा चौबे बनारसीदास ने इसे बनवाया था। बनारसीदास के पुरखे मथुरा के पुराने महाजनों में माने जाते थे। अंग्रेजों के आने के साथ हिन्दुस्तान के महाजनों को धीरे-धीरे व्यापार का चस्का लगने लगा था। चौबे बनारसीदास के पिता ने आगरे आकर शिकरम और घोड़ा गाड़ियों का काम चलाया। आगरे से मथुरा, और मथुरा से कोसी तक शिकरमें दौड़ने लगीं। चार सौ महीने का अंग्रेज मैनेजर नौकर रक्खा और चौबे जी कीं तिजोरी में लक्ष्मी जी अपनी टाँगें तोड़कर विराज गयीं। मगर कुछ बरसों बाद जी०आई०पी० की नई रेल चल जाने से व्यापार ठंडा पड़ गया। इस वक्त तक चौबेजी के पिता का गोलोकवास हो चुका था। बनारसीदास को कामधन्धे से कोई दिलचस्पी न थी। फिर भी मामूली तौर पर अपना कामकाज समझ लिया करते थे। यह व्यापार ठंडा पड़ जाने के बाद उन्होंने सोचा कि कुछ और करना चाहिए। चूँकि घराने में व्यापार का चलन चल गया था, इसलिये कुछ करना था। किसी ने सलाह दी कि गोटे का कारखाना खोल लो। खुल गया। काम एक बहाने सा चलता रहा। इसी व्यवहार के सिलसिले में लखनऊ से व्यापारी आकर अक्सर इनके यहाँ मेहमान होते थे। उनकी सलाह और सोहबत का रंग गहरा होते-होते यहाँ तक पहुँचा कि लखनऊ में किले जैसी हवेली बन गयी। बड़े फाटक से घुसते ही बाएँ हाथ पर अपने मुसलमान नौकरों-कारीगरों के लिए पन्द्रह बीस कोठरियाँ और एक छोटी सी मस्जिद बनी और दाहिने हाथ पर इतनी ही रहने की जगह उनके हिन्दू नौकरों को मिली। उनके लिए मन्दिर नहीं बनवाया गया। हवेली के अन्दर, ठाकुरद्वारे में श्री बाँकेबिहारीलाल जी तो थे ही—चौबेजी के नौकर उनकी और उनकी

राधा, ललिता, विशाखा की सेवा का फल चौबेजी तथा उनकी गोपियों की सेवा करके ही पा जाते थे ।

लखनऊ आकर चौबेजी का ध्यान एक दिन के लिए भी अपने व्यापार की ओर न गया । धीरे-धीरे काम-काज ठग पड़ गया । नौकर-चाकर धीरे-धीरे आजाद हो गए । लावारिस धन और स्त्री पर सभी का हक पहुँचने लगता है । फिर चौबे जी का दिल दरियाव भी कुछ कम न था । एक तरफ गोमती बहती थी; दूसरी तरफ चाबे जी का खानदानी हनवा । गोमती में दूसरे-तीसरे साल बाढ़ आती थी और चौबेजी की हेसियत में उतार ।

चौबेजी के तीनों लड़के तब तक संभल चुके थे । मझला दुनियादार निकला और बड़का छुटकऊदोनों बाप की राह पर चल निकले । मझले ने हिस्सेबाँट कर देने पर हठ ठाना । तब तक जमींदारी करीब-करीब मिट चुकी थी, पैस की माया भी करीब-करीब लोप हो चुकी थी — मुश्किल से पच्चीस-पचास हजार पड़े हों, तो हों ! हाँ, घर के जेवर, रुपड़े, बर्तन आदि अभी भी अपनी पुरानी शान पर कायम थे ।

हिस्सेबाँट के बाद मझले चौबे की माया तो बढ़ने लगी । उन्होंने अपना घी गल्ले का रोजगार भी चलाया । हाते में पुराने फोफटिये नौकरों को नये सिर से किरायेदार बनाया । अपनी-पराई — जिसकी मेल्कियत में जो भी दांव लगा गया सो सब मझले चाबे को सिद्ध हुआ । बाकी बनारसीदास और उनके बाकी दोनों कुलदीप अपने सात मुखों के नाम पर बुँघरों का संकल्प कर हिक्की से तर्पण कर रहे थे ।

एक दिन जब द्रव्य की धार धोखा दे गई तो भाइयों की आँख बुली । देखा कि मझले भइया धीरे-धीरे उनका सब कुछ अंगीकार गहन आँधीर बने बैठे हैं । गीता का उपदेश और वैराग्य का ज्ञान देते हुए मझले चौबे ने अपने दोनों भाइयों को जता दिया कि रुपया अब और नहीं मिलेगा ।

“मैं तेरा हलक चीर के निकाल लूंगा रुपया”—बड़कऊ मझले से गुत्थम-गुत्था में जुट गये। मझले चौबे अचानक वार का भार न संभाल पाये। बड़कऊ पर भूत सवार था; गिरा कर छातों पर चढ़ बैठे, और कस-कस कर गला घोटने लगे। जब घरवाले मझले को बचाने लपके, तो छूटकऊ बड़कऊ को बचाने लपके। “किस घड़ी की कैसी होनी आयी और क्या दिखा गई”—कहकर पड़ोसियों ने बात को खतम किया मगर चौबे बनारसीदास के लिए जग में अंधेरा हो गया। एक तो मर ही गया, अब दो ही बच जायं—यह सोचकर चौबे बनारसी दास ने आगरे की हवेली और दूकाने बेंच डालीं। बैंक में जो कुछ था, उसे वकीलों के खाते में डाल दिया, यह हाता-हवेली भी गिरवी रख दी। चौबे बनारसीदास के पास जो कुछ बचा था, वह सब स्वाहा हो गया, पर वे अपने बड़कऊ छूटकऊ को न बचा पाये। हाँ उनकी नशेबाजी ने उन्हें फांसी के फंदे से उतारकर काले पानी में डाल दिया। इसके बाद से चौबे बनारसीदास तो एकदम से गुम्म हो गये। न किसी से मिलना-जुलना, न किसी से कहना-सुनना, अगर कोई खाना ले आया तो खा लिया, न लाया तो माँगा भी नहीं।

बटुएँ अपने नाबालिगों की तरफ से अपना-अपना सब समेट कर बैठ गयीं। दरअसल दूसरों के पास बचा ही क्या था, मझली बहू ही सबको नाकों चने चबवाती थी। बड़ी बहू पाँच छः बरस बाद ही मर गई और छोटी चौबीसीं घंटे ठाकुरद्वारे में रहती हैं। उनके कोई संतान भी नहीं। ठाकुरद्वारे में जैसे खंभे-दीवारें हैं वैसे ही एक छोटी बहू भी हो गयी हैं। ठाकुरजी के दिये की तरह चुपचाप जलती रहती हैं।

दिन बीतते गये। नाबालिग बालिग हो गये। मझले का लड़का राधेबिहारी अपने बाप से सवाया उठा। चाचा-ताऊ के लड़कों को खड़े-खड़े घर से निकाला, बाबा के चारों वेद छीनकर उन्हें बदले की

भावना के साथ उन्हें घर के नौकर के दर्जे तक बल्कि उनसे भी बदतर हालत में पहुँचा दिया। बदले की बात यह थी कि यह हवेली और हाता अब भी चौबे बनारसीदास के ही नाम पर थे। अपने लड़कों की जान बचाने के लिए चौबे जी ने इसे जब गिरवी रखा था उसके बाद से छुड़ाने की नौबत नहीं आयी। राधेबिहारी सूद व्याज अदाकर इस जायदाद पर अपना कब्ज़ा करना चाहता है। लेकिन बुढ़ा तैयार नहीं होता। जितनी-जितनी उसकी सख्ती चौबे बनारसीदास पर होती है, उतनी ही उनकी जिद भी बढ़ती जाती है। उन्हें घर के जूठे बरतन माँजने पड़ते हैं। उन्हें आँगन में नाली के पास खाना परोस कर दिया जाता है। घर भर में ऐसा कोई नहीं जो चौबे बनारसीदास पर हाथ न उठा सकता हो—यहाँ तक कि राधे बिहारी की शह पाकर उसके नौकर-चाकर तब उन पर हाथ उठा बैठते हैं।

राधेबिहारी को रह-रह कर यही डर रहता था कि कहीं बाबा किसी से मिलजुल कर यह हवेली ओनेपोने न कर डालें। गणेशदास महाजन के दो ढाई लाख की अदायगी में पाँच छः लाख की यह जायदाद कहीं हाथ से न निकल जाय। इसीलिए वह बाबा पर और सख्त निगरानी रखते हैं; किसी से मिलने-जुलने तक नहीं देते। राधेबिहारी की सख्तियों ने, ओर जिदगी का पर्दा इतने अचानक पलट जाने की वजह से चौबे बनारसीदास का मन डरे हुए मासूम बच्चे सा हो गया है। चौबीसों घंटेकी दीनता और गिड़गिड़ाहट, उनके रियासतों में पले बूढ़े शरीर पर हर किस्म की जिल्लत का बोझ उठाते-उठाते, अब एक स्वभाव बन गई है। मगर इस नये स्वभाव की तह में उनकी पुरानी रियासती जिद जहाज के लंगर की तरह उन्हें तूफानों में भी थामे हुए है। इस जिद की शक्ति है यह हवेली-हाता, जो आज भी उनके नाम पर है। यह अधिकार राधेबिहारी की तमाम सख्तियों का जवाब है,

और इसीलिए वे हठ के साथ इस अधिकार को छोड़ने से इनकार करते हैं।

आज भी तीसरे पहर जब राधेबिहारी ने उन्हें अपने कमरे में बुलाकर कागज पर दस्तखत करने को कहा, किसी हद तक खुशामद भी की, तब चौबे बनारसीदास सदा की तरह पत्थर की मूर्त बने सिर झुकाये चुपचाप खड़े हो गये थे। राधेबिहारी कह-कहकर हार गया था, मगर ये ज्यों के त्यों खड़े रहे। और जब राधेबिहारी ने इन्हें मारना शुरू किया तो बच्चों की तरह चीख कर तेजी से भागे। सीधे मल्का दूरिया की कोठरी में घुसकर उनके पैरों से लिपट गए। मल्का दूरिया इस चौरासी बरस के बूढ़े की मां है। साल भर पहले ही इस हाते में आकर बसी थी। उम्र तेईस चौबीस से अधिक नहीं। जिस मोटापे ने इन्हें अपने मरद से छुड़ाया; उसी के कारण इनका नाम भी मल्का दूरिया पड़ गया। पति दूसरी शादी करने गया, और ये अपने सब गहना-पत्तर समेट कर चौबे के हाते में आ बसीं। गहना बेंच खोंच कर उसी रुपये से मंडी में अपने मरद के बराबर ही आलू की मुकीम बन गयीं। सबेरे के तीन चार घंटों में लड़ झगड़ कर अच्छा मुनाफा पीट लेती हैं; और दिन भर हर खोंचेवाले से कुछ न कुछ सौदा लेकर खाती पीती रहती हैं। सालभर के छोटे बच्चों, खास तौर से गोदी के बच्चों से मल्का दूरिया का सगा नाता है; किसी को उबटन, किसी के काजल, किसी को नहलाना-धुलाना, किसी का नजर टोटका उतारना—बस यही उनका काम है। यों हर एक के दुख सुख में शामिल रहती हैं। मगर किसी की लग लपेट में नहीं रहती। कोई भी हो, सबको बेझिझक खरी ही खरी सुनाती हैं। हाते में बसने पर चौबे बनारसीदास का हाल जानकर राधेबिहारी की मां और बहू को खरी खरी सुना आयी थीं। तब से ही चौबे बनारसीदास को एक मां मिल गई है। मल्का दूरिया अपने बाबा के लिए कुछ न कुछ सौदा मंगा

कर उन्हें चुपचाप खिला देती है। बहुत पिटने-कुटने पर इनके सूजे हुए शरीर पर हल्दी चूने का लेप चढ़ाती है, इनके हाथ-पैर दाबती है और फिर हवेली के सामने खड़े होकर एक मुंह से अपने बाबा को सतानेवालों को कोसती हैं। राधेबिहारी का बस नहीं चलता। अपने मरद से तलाक फारसूती का दावा करके वह पुलिस कचहरी सब कुछ कर चुकी हैं, इसलिए उनका जीवट बढ़ा हुआ है। राधेबिहारी जब उन्हें निकालने की घमकी देते हैं, तब कानून सुनाती हैं। राधे बिहारी को मल्का टूरिया की सूरत से चिढ़ है, वह हजार कोशिशों के बाद भी बाबा का वहाँ जाना रोक नहीं सका। और इसीलिए आज भी जब बाबा उसकी मार से डरकर घर से भागे तो राधेबिहारी अपने को सँभाल न सका। उनका पीछा उसने मल्का टूरिया की कोठरी तक किया। मल्का के पैरों से लिपटे हुए बनारसीदास को ठोकड़ों से मारते हुए उसने कहा था—“साला बूढ़ा, न काम का न धाम का। जब देखो, यहीं आकर गड़ जाता है।”

मल्का टूरिया ने वहीं कालर पकड़ कर राधेबिहारी की बाबू साहबी ढीली कर दी थी। कुचले हुए नाग की तरह मन ही मन फुफकार मारता हुआ राधेबिहारी अपने बूढ़े बाबा को कुत्ते की तरह घसीट कर ले गया। अपने कमरे में ले जाकर राधेबिहारी ने लकड़ियों ही लकड़ियों उनकी हड्डियाँ सुजादीं। इस वक्त बनारसीदास के मुंह से एक चीख न निकली, एक करवट तक न ली। पत्थर की हड्डियों पर चोट सहते रहे। बाबा और पोते की जिद अपनी-अपनी आन पर अड़ी रही। बाबा ने कागज पर दस्तखत न किये। हार कर राधेबिहारी उन्हें वहीं बन्द कर चला गया।

आधी रात को बनारसी दास की चीख फिर सुनाई पड़ी; ‘अरे मेरी मां ! मर गया रे ! !”

फिर मल्का टूरिया को भला ताब कहाँ। चीच-चीख कर सारा मुहल्ला

इकट्ठा कर लिया। बाबा को मारनेवाले का रोम-रोम उसने कोस डाला। मल्का टूरिया का विलाप भीड़ की इकट्ठी सहानुभूति को राधेबिहारी के खिलाफ गुस्से में भड़का गया। मल्का एक ही रट लगाये थीं : “मुझे बाबा के पास पहुँचा दो। मुझे मेरे बाबा को दिला दो।”

पुलिस तक रिपोर्ट जाने की धमकी ने राधेबिहारी को मजबूर कर दिया। अन्दर से दो नौकर बाबा के मार से सूजे बेहोश शरीर को लाकर दरवाजे पर रख गये। कसाई की छुरी के नीचे पड़े हुए अपने बच्चे को बचाने के लिए जैसे गाय झपटे, वैसे मल्का टूरिया ने झपट कर बेहोश बाबा को उठाकर अपने कलेजे से चिपका लिया। जोश में भरी भीड़ राधेबिहारी को कहनी-न-कहनी सुनाती रही। लेकिन मल्का टूरिया के कान इस वक्त कुछ नहीं सुन रहे थे। स्त्री के अन्दर सदा जागती जोत सी चमकनेवाली माँ की आत्मा अपने चौरासी बरस के बेटे को होश में लाने का उपाय कर रही थी !

दो आस्थायें

अरी कहाँ हो ? इन्दर की बहुरिया !—कहते हुए आँगन पार कर पण्डित देवधर की घरवाली सँकरे, अँधेरे, टूटे हुए जीने की ओर बढ़ीं !

इन्दर की बहू ऊपर कमरे में बैठी बच्च का झबला सी रही थी । मशीन रोक कर बोली—आओ, बुआजी ! मैं यहाँ हूँ ।—कहते हुए वह उठकर कमरे के दरवाजे तक आयी !

छुटने पर हाथ टेक कर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए पण्डिताइन इस क्रुद्धर हाँफ रही थीं कि ऊपर आते ही जीने के बाहर की दीवार से पीठ टेक कर बैठ गई ।

इन्दर की बहू आगे बढ़ कर पल्ले को दोनों हाथों की चुटकियों से पकड़ सात बार अपनी फुफिया सास के पैरों पड़ी ।

—ठंडी सीरी बूढ़ सुहागन, दूधन नहाओ पूतन फलो—आशीर्वाद देती हुई पण्डिताइन रुकीं, दम लेकर अपने आशीर्वाद को नया बल देते हुए कहा— हम तो, बहुरिया, रात—दिन यही मनाएँ हैं । पहलौठी का होता तो आज दिन ब्याव की फिकर पड़ती । (दबी आह) राम करै, मारकण्डे की आर्बल लैके आवै जल्दी से । राम करै, सातों सुख भोगो, बेटा ।

इन्दर की बहू का मुख-मंडल करुणा और श्रद्धा से भर उठा,

पलकें नीची हो गयीं। फुफिया सास की बाँह पकड़कर उठाते हुए कहा—कमरे में चलो बुआ जी।

—चलो, रानी। तनिक सँताय लिया, तो साँस में साँस अमायी। अब हमसे चढ़ा—उतरा नहीं जाय है बेटा। क्या करें ?

बुआजी उठकर बहुरिया के साथ अन्दर आयीं। मशीन पर नन्हा सा झबला देखकर बुआ जी ने अपनी भतीज-बहू को खुफिया पुलिस की दृष्टि से देखा, फिर पूछा—ई झगला....

—दूध वाली के बच्चे के लिए सी रही हूँ। चार बिटियों के बाद अब के लड़का हुआ है उसे। बड़ा शुभ समै है बिचारी के लिये।

—बड़ी दया-मामता है बहू तुमरे मन में। ठाकुर जी महाराज तुमरी सारी मनोकामना पूरी करें। तुम्हें औ इन्दर को देख के ऐसा चित्त परसन्न होय है। ऐसा कलेजा जुड़े हैं, बेटा कि....जुग जुग जियौ ! एक हमरे भोला-तिरभुअन की बहुयें हँगी। (आह फिर विचार मग्नता) हूँ : ! जैसा मातुख, वैसी जोय। बहू बानी तो कच्चा कच्चा बेत होमें हँगी। पराये घर की बेटियों को क्या दोख दूं।

-- कोई नई बात हुई, बुआजी ?

—अरे, जिस घर के सिस्कार ही बदल जायँ, उस घर में नित नई बात होवेगी। हम तो कहमें हैं, रानी, कि हमरे पाप उदै भये हैं।

कहकर बुआ जी की आँखें फिर शून्य में सध गईं। इन्दर की बहू को 'नई बात' का सूत्र नहीं मिल पा रहा था, इसलिए उसके मन में उथल-पुथल मच रही थी। कुछ नई बात जरूर हुई है, वो भी कहते थे कि फूफा जी कुछ उखड़े-से खोये हुए-से हैं।

—बड़े देवर की कुतिया क्या फिर चौके में.....—इन्दर की बहू का अनुमान सत्य के निकट पहुँचा। घटना पंडित देवधर के

ज्येष्ठ पुत्र डॉक्टर भोलाशंकर भट्ट द्वारा पाली गयी असला स्काटलैंड के श्वान की बेटी जूलियट के कारण ही घटी। इस बार तो उसने गज़ब ही ढा दिया। पंडित जी की बगिया में पुरखों का बनवाया हुआ एक गुप्त साधना-गृह भी है। घर की चहार दिवारी के अंदर ही यह बगिया भी है, उसमें एक ओर ऊँचे चबूतरे पर एक छोट्टा सा मंदिर बना है। मंदिर में एक सन्यासी का पुराना कलमी चित्र चन्दन की नक्काशीदार जर्जर चौकी पर रखा है। उस छोटे से मंदिर में उकड़ू बैठकर ही प्रवेश किया जा सकता है। मंदिर के अंदर जाकर दाहिने हाथ की ओर एक बड़े आलेनुमा द्वार से अपने सारे शरीर को सिकोड़ कर ही कोई मनुष्य साधना-गृह में प्रवेश कर सकता है। इस गृह में संगमर की बनी सरस्वती देवी की अनुपम मूर्ति प्रतिष्ठित है जिस पर सदा तेल से भिगोया रेशमी वस्त्र पड़ा रहता है। केवल श्री मुख के ही दर्शन होते हैं। मूर्ति के सम्मुख अखण्ड दीप जलता है। यह साधना-गृह एक मनुष्य के पालथी मारकर बैठने लायक चौड़ा तथा मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करने लायक लम्बा है। पंडित देवधर जी के पिता-मह के पिता को सन्यासी ने यह मूर्ति और महा सरस्वती का बीज मंत्र दिया था। सुनते हैं, उन्होंने सन्यासी की कृपा से यहीं बैठकर वाग्देवी को सिद्ध किया और लोक में बड़ा यश और धन कमाया था। पंडित जी के पितामह और पिता भी बड़े नामी-गिरामी हुए, रजवाड़ों में पुजते थे। पंडित देवधर जी को यद्यपि पुरखों का सिद्ध किया हुआ बीज-मंत्र नहीं मिला, फिर भी उन्होंने अपने यजमानों से यथेष्ट पूजा और दक्षिणा प्राप्त की। बीज मंत्र इसलिए न पा सके कि वह उत्तराधिकार के नियम से पिता के अन्तकाल में उनके बड़े भाई धरणीधर जी को ही प्राप्त हुआ था और वे भरी जवानी में ही हृदय-गति रुक जाने से स्वर्ग सिधार गए थे। फिर भी पंडित देवधर जी ने आजीवन बड़ी निष्ठा के साथ जगदम्बा की सेवा की है।

एक दिन नित्य-नियमानुसार गंगा से लौटकर सबेरे पंडित जी ने जब साधना-गृह में प्रवेश किया तो उसे भोला की कुतिया के सौरी-घर के रूप में पाया। पंडित जी की क्रोधाग्नि प्रचंड रूप से भड़क उठी। लड़के-लड़कों की बहूँ, एकमत होकर पंडित देवधर से ज़बानी मोर्चा लेने लगे। पंडित देवधरजी न उस दिन से घर में प्रवेश और अन्न-जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ले रखी है। वे साधना-गृह के पास कुँए वाले दालान में पड़े रहते हैं। आज चार दिन से उन्होंने कुछ नहीं खाया। कहीं और बाज़ार में तो वे खाने-पीने से रहे, शायद इन्दर के घर भोजन करते हों। यही पूछने के लिए इन्दर की बुआ इस समय यहाँ आयी थीं। परन्तु उनकी भतीज-बहू ने जब उनके यहाँ भोजन न करने की बात बताई तो सुनकर बुआ जी कुछ देर के लिये पत्थर हो गयीं। पति की अड़सठ वर्ष की आयु, नित्य सबेरे तीन बजे उठ दो मील पैदल चलकर गंगा जी जाना आना, अपना सारा कार्य-क्रम निभाना दोपहर के बारह-एक बजे तक ब्रह्म-यज्ञ, भागवत पाठ, सरस्वती कवच का जप आदि यथावत् चल रहा है; और उनके मुँह में अन्न का एक दाना भी नहीं पहुँचा। यह विचार बुआ जी को जड़ बना रहा था।

—ये तो सब बातें मुझे इत्ती बखत तुमसे मालूम पड़ रही हैं बुआ जी। फूफा जी ने तो मेरी जान में कभी कुछ भी नहीं कहा। कहते तो मेरे सामने ज़िक्र आये बिना न रहता।

—अरे तेरे फूफा जी रिसी--मुनी हैंगे बेटा ! बस इन्हें करोध न होता, तो इनके ऐसा महात्मा नहीं था फिरथी पे। क्या करूँ, अपना जो धरम था निभा दिया। जैसा समय हो वैसा नेम साधना चाहिए। पेट के अंश से भला कोई कैसे जीत सके हैं।

—तो फूफा जी आखिर कितने दिन यों ही बिना खाए चल सकेंगे। ढापे का शरीर है.....

—बोई तो मैं भी कहूँ हूँ, बेटा। मगर इनकी ज़िद के अगाड़ी मेरी कहाँ चल पावे हैं ? वही होवे हैं, तो कोने में बैठके रो लूँ हूँ।

—कहते-कहते बुआ जी का गला भर आया, बोलीं—इनके सामने सबको रखके चली जाऊँ तो मेरी गत सुधर जाय । जाने क्या-क्या देखना बड़ा है लिलार में !—बुआ जी टूट गयीं, फूट-फूटकर रोने लगीं ।

—तुम फिकर न करो, बुआ जी । इतने दिनों तक तो मालूम नहीं था, पर आज से फूफा जी के खाने पीने का सब इन्तज़ाम हो जायगा ।

२

डाक्टर इन्द्रदत्त शर्मा के युनिवर्सिटी से लौट कर आने पर चाय पीते समय उनकी पत्नी ने सारा हाल कह सुनाया । इन्द्रदत्त सन्न रह गए । प्रेयसी के समान मनोहर लगने वाली चाय की प्याली परित्यक्ता पधू की तरह उनके ध्यान-मन से उतर गयी । इन्द्रदत्त अपने फूफा जी के हठ को पहचानते थे । फूफा जी बिना किसी से कुछ कहे-सुने इसी प्रकार अनशन कर प्राण-त्याग कर सकते हैं, इसे इन्द्रदत्त अच्छी तरह जानते थे । उनके अन्तर का कष्ट चेहरे पर तपड़ने लगा । पति की व्यथा को गौर से देखकर पत्नी ने कहा—तुम आज उन्हें खाने के लिए रोक ही लेना । मैं बड़ी शुद्धताई से बनाऊँगी ।

—प्रश्न यह है वे मानगे भी ? उनका तो चन्द्र टरै सूरज टरै वाला हिसाब है ।

—तुम कहना तो रही ।

—कहूँगा तो सही, पर मैं जानता हूँ । लेकिन इस तरह वे चलेंगे कितने दिन ? भोला को ऐसा हट न चाहिए ।

—भोला क्या करें । कुतिया के पीछे पीछे घूमते फिरे ? शोक है अपना और क्या ? फूफा जी को भी इतना विरोध न चाहिए ।

—फूफा जी का न्याय हम नहीं कर सकते ।

—अभी मान लो तुम्हारे साथ ही ऐसी गुजरती ?

—मैं निभा लेता ।

—कहना आसान है, करना बड़ा मुश्किल है । फूफा जी तो चाहते हैं सबके सब पुराने ज़माने के बने रहें । चोटी जनेऊ, छूतछात सिनेमा न जाओ और घूँघट काढ़ो, भला ये कोई भी मानेगा ?

—मेरे ख्याल में फूफा जी इस पर कुछ.....

—भले न कहें, उन्हें अच्छा तो नहीं लगता ।

—ठीक है । तुम्हें भी मेरी बहुत सी बातें अच्छी नहीं लगती ।

—कौन सी बातें ?

—मैं शिकायत नहीं करता । उदाहरण दे रहा हूँ ठीक-ठीक एक मत के कोई दो आदमी नहीं होते । होते भी हैं, तो बहुत कम । पर इससे ब्या लोगों में निभाव नहीं होता ? भोला और उसकी देखादेखी त्रिभुवन में भी घमंड आ गया ; माँ-बाप को ऐसे देखते हैं, जैसे उनसे पैदा ही नहीं हुए । फूफा जी हटी और रूढ़िपन्थी हैं सही पर एकदम अवज्ञा के योग्य नहीं । ये लोग उन्हें चिढ़ाने के लिए घर में प्याज़, लहसुन अंडा, मछली सब कुछ खाते हैं । फूफा जी ने अपना चौकाघर ही तो अलग किया । किसी से कुछ कहा-सुना तो नहीं ?

स्वभाव से शान्त और बोलने में मितव्ययी इन्द्रदत्त इस समय आवेश में आ गए थे । फूफा जी चार दिनों से निराहार हैं । फूफा जी के प्रति उसका सदा से आदरभाव था । लोक उनका आदर करता है । इधर महीनों से इन्द्रदत्त के आग्रह पर पं० देवधर जी प्रतिदिन शाम के समय दो ढाई घण्टे उनके घर बिताते हैं । कभी भागवत, कभी रामायण, कभी कोई पौराणिक उपाख्यान चल पड़ता है । पंडित जी अपनी तरह से कहते हैं, इन्द्रदत्त उनके द्वारा प्राचीन समाज के क्रम-विकास के चित्र देखता, उनसे, अपने लिए नया रस पाता । कभी कभी बातों के रस में आकर अपने राजा-ताल्लुकेदार यजमानों

के सजेदार सस्मरण सुनाते हैं कभी उनके बचपन और जवानी की स्मृतियों तक से टकराती हुई पुरानी सामाजिक तस्वीरें, इन मुहल्लों की पुरानी झाँकियाँ सामने आ जाती हैं। फूफा जी के अनुभवों से अपने लिए ज्ञान-सूत्र बटोरते हुए उनके निकट संपर्क में आकर इन्द्रदत्त को आदर के अलावा उनसे प्रेम भी हो गया है।

इन्द्रदत्त की पत्नी के मन में आदर भाव तो है, पर जब से वे बराबर आकर बैठने लगे हैं, तब से उसे एक दबी ठन्डी शिकायत भी है। पति के साथ घड़ी दो घड़ी बैठकर बातें करने, कैरम या चौसर खेलने या अपने पैत्रिक घर के संबन्ध में, जो अब नए सिरे से बन रहा है, सलाह-सूत करने का समय उसे नहीं मिल पाता। अपनी छोटी देवरानी त्रिभुवन की बहू से बड़ा नेह-हेतु होने के कारण उसकी बातों में विश्वास रखकर वह फूफाजी के पुरानेपन से किसी हद तक फिरंट भी है। इस लिए जब इन्द्रदत्त ने यह कहा कि घर में मांस-मछली के प्रयोग के बाद फूफाजी ने अपना चोका भलग कर लिया, मगर कुछ बोले नहीं, तो उनकी पत्नी से रहा नहीं गया। कहने लगी—तो उन लोगों से—अरे पोते-पोतियों तक से तो बोलते नहीं, फिर शिकायत किससे करेंगे ?

—फूफाजी को पहचानने में बस यहीं तुम लोग गलती करते हो। उनका प्रेम प्रायः गुंगा है। मैंने अनुभव से इस बात को समझा है।—बन्द रहने पर भी क्षिरक्षिरे दरवाज़ों से जिस तरह लू के तीर आते हैं, संयमी इन्द्रदत्त के अन्तर में उद्बेग इसी तरह प्रकट हो रहा था।

पत्नी ने पति के रुख पर रुख किया; तुरन्त शान्त और मृदु स्वर में कहा—मैं फूफाजी को पहचानती हूँ। उनके ऐसे विद्वान्-की-रुदर उस घर में नहीं। उनका प्रेम तुम जैसी से हो सकता है। तुम चिन्ता न करो। बरत आज पूरा हो जायगा।

—मान जायेंगे ?—पत्नी के चेहरे तक उठी इन्द्रदत्त की आँखों में शंका थी, उनका स्वर करुण था ।

—प्रेम नेम से बड़ा है । —पति के क्षोभ और चिन्ता को चतुराई के साथ पत्नी ने मीठे आश्वासन से हर लिया, परन्तु वह उन्हें फिर चाय-नाश्ता न करा सकी ।

३

डाक्टर इन्द्रदत्त शर्मा फिर घर में बैठ न सके । आज उनका धैर्य डिग गया था । फूफा जी लगभग छै साढ़े छै बजे आते हैं । इन्द्रदत्त का मन कह रहा था कि वे आज भी आएँगे पर शंका भी थी । मुमकिन है अधिक कमज़ोर हो गए हों, न आएँ । इन्द्रदत्त ने स्वयं जाकर उन्हें बुला ले आना ही उचित समझा । हालाँकि उन्हें यह मालूम है कि इस समय फूफा जी स्नान-संध्या आदि में व्यस्त रहते हैं । पं० देवधरजी का घर अधिक दूर न था । डाक्टर इन्द्रदत्त सदर दरवाजे से घर में प्रवेश करने के बजाय एक गली और पार कर बगिया के द्वार पर आए । फूफा जी गंगा लहरी का पाठ कर रहे थे । फूलों की सुगंधि सा उनका मधुर स्वर बगिया की चहारदीवारी के बाहर महक रहा था :

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा,
विलोल द्वानीरं तव जननि तीरे श्रित वतान् ।
सुधातः स्वादीथः सलिलभिदाय तृप्ति पिवताम् ।
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाण पदवीम् ॥

इन्द्रदत्त दरवाजे पर खड़े-खड़े मुनते रहे । आँखों में आँसू आ गए । फूफा जी का स्वर उनके कानों में मानो अंतिम बार की प्रसादी के रूप में पड़ रहा था । कुछ दिनों बाद, कुछ ही दिनों बाद यह स्वर फिर सुनने को न मिलेगा । कितनी तन्मयता है, आवाज़ में कितनी जान है । कौन कहेगा कि पंडित देवधर का मन क्षुब्ध है, उन्होंने चार दिनों

से खाना भी नहीं खाया है ?.... ऐसे व्यक्ति को, ऐसे पिता को भोला-त्रिभुवन कष्ट देते हैं ? इन्द्रदत्त इस समय अत्यन्त भावुक हो उठे थे । उन्होंने फूफा जी की तन्मयता भङ्ग न करने का निश्चय किया । गंगा लहरी पाठ कर रहे हैं, इसलिए नहाकर उठे हैं या नहाने जा रहे हैं, इसके बाद संध्या करेंगे । फूफा जी से भेंट हो जायगी । उनके कार्यक्रम में विघ्न न डालकर इतना समय बुआ के पास बैठ लूंगा यह सोच कर वे फिर पीछे की गली की ओर मुड़े ।

४

—अम्मा !

—हाँ, बड़ी ।—अपने कमरे में, दरवाजे के पास घुटनों पर ठोड़ी, टिकाए दोनों हाथ बाँधे गहरे सोच में बैठी थीं । जेठे बेटे की बहू का स्वर सुनकर तड़पड़ ताज़ी हो गयी । हाँ, इतनी देर के खोएपन ने उनके दोन स्वर में बड़ी कष्टना भर दी थी ।

बड़ी बहू के चेहरे की ठसक को उनकी कमर के चारों ओर फूली हुई चर्बी सोह रही थी, आवाज भी उसी तरह मिजाज के काँटे पर सघी हुई थी, वे बोली—उन्होंने पुछवाया है कि दादा आखिर चाहते क्या हैं ?

—वो तो कुछ भी नहीं चाहे हैं, बहू ।

—तो ये अनशन फिर किस बात का हो रहा है ?

पंडित देवधर की सहधर्मणी ने स्वर को और संयत कर उत्तर दिया—उनका सुभाव तो तुम जानो ही हो, बहुरिया ।

—ये तो कोई जबाब नहीं हुआ, अम्मा । तो क्या जान देंगे ? ऐसा हट भी भला किस काम का ? बड़े विद्वान् हैं, भक्त हैं.... दुनिया भर को पुनर्न और परोपकार सिखाते हैं.... कुत्ते में क्या उसी भगवान् की दी हुई जान नहीं है ?

बड़ी बहू तेज़ पड़ती गयी, सास चुप चाप सुनती रही ।

—ये तो माँ बाप का धरम नाहीं हुआ, ये तो दुश्मनी हुई, और क्या ? घर में सबसे बोलना-चालना तो बन्द कर ही रखा था ।

—बोलना-चलना तो उनका सदा का ऐसा ही है, बेटा । तुम लोग भी इतने बरसों से देखो हो, भोला-निरभुअन तो सदा से जाने हैं ।

—इन्दर भाई साहब के यहाँ यो घुल-घुल के बातें करते हैं ।

—इन्दर पढ़ा-लिखा है न, वैसी ही बातों में इनका मन लगे है । इसमें....

—हाँ-हाँ हम लोग तो सब गँवार हैं, भ्रष्ट हैं । हम पापियों की तो छाया देखने से भी उनका धर्म नष्ट होता है ।

—बहू, बेटा, गुस्सा होने से कोई फायदा नहीं । हम लोग तो चिता में खड़े भये होंगे रानी । तुम सबको रखके उनके सामने चली जाऊँ, विश्वनाथ बाबा से उठते-बैठते आंचल पसार के बरदान माँगूँ हूँ, बेटा.... अब मेरे कलेजे में दम नहीं रहा क्या करूँ ?

बुआ जी रो पड़ीं ।

इन्द्रदत्त ज़रा देर से दालान में ठिठके खड़े थे, बुआ को रोते देख उनकी भावुकता थम न सकी, पुकारा—बुआ ।

बुआ जी एक क्षण के लिए ठिठकीं; चट से आँसू पोंछ, आव ज सम्हालकर मिठास के साथ बोली—आओ, भैया ।

भोला की बहू ने सिर का पल्ला ज़रा सम्हाल लिया और शराफती मुस्कान के साथ अपने जेठ को हाथ जोड़े ।

इन्द्रदत्त ने कमरे में आकर बुआ जी के पैर छुए और पास ही बैठने लगे । बुआ जी हड़बड़ा कर बोलीं—अरे चारपाई पर बैठो ।

—नहीं । मैं सुख से बैठा हूँ आप के पास ।

—तो ठहरो । मैं चटाई

बुआ जी उठों, इन्द्रदत्त ने उनका हाथ पकड़कर बैठा लिया और फिर भोला की बहू को देखकर बोला—कैसी हो सुशीला ? मनोरमा कैसी है ?

—सब ठीक हैं ।

—बच्चे ?

—अच्छे हैं । भाभी जी और आप तो कभी झाँकते ही नहीं । इतने पास रहते हैं और फिर भी.....

—मैं सबकी राजी-खुशी बराबर पूछ लेता हूँ । रह! आना-जाना सो...

—आपको तो खैर टाइम नहीं मिलता, लेकिन भाभीजी भी नहीं आती, बाल नहीं, बच्चे नहीं, कोई काम.....

—घर में मदद लगी है । ऐसे में घर छोड़ के कैसे आए बिचारी ?

—बुआजी ने अपनी बहू की बात काटी ।

बहू आँखें चढ़ाकर याद आन का भाव जनाते हुए बोली—हाँ, ठीक है । कौन सा हिस्सा बनवा रहे हैं, भाई साहब ?

—पूरा घर नए सिरे से बन रहा हैगा । ऐसा बढ़िया कि मुहल्ले में ऐसा घर नहीं है किसी का ।—सास ने बहू के वैभव को लज्जित करने की दबी तड़प के साथ कहा । बुआ जी यों कहना नहीं चाहती थी, पर जी की चोट अनायास फूट पड़ी । बड़ी बहू ने आँखें चमका, अपनी दुहरी ढोड़ी को गर्दन से चिपका कर अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को जतलाया, और पूछा—पर रहते तो शायद....!

—पीछे वाले हिस्से में रहते हैं ।

—इसी हिस्से में जीजी का, मेरा और भैया का जनम भया । एक भाई और भया था । सब यहीं भए ? हमारे बाप ताऊ, दादा और जाने कौन-कौन का जनम....!

—वो हिस्सा घर भर में सबसे ज्यादा खराब है । कसे रहते हैं ?

—जहाँ पुरखों का जन्म हुआ, वह जगह स्वर्ग से भी बड़कर है ।
पुरखे पृथ्वी के देवता हैं ।

बड़ी बहू ने आगे कुछ न कहा, सिर का पल्ला फिर सम्हालने लगी ।

—आज तो बहुत दिनों में आए, भैया । मैं भी इतनी बार गई ।
बहू से तो भेट हो जावे है ।

बुआ भतीजे को बातें करते छोड़कर बड़ी बहू चली गई । उसके जाने के बाद दो क्षण मौन रहा । उसके बाद दोनों ही प्रायः साथ-साथ बोलने को उद्यत हुए । इन्द्रदत्त को कुछ कहते देखकर बुआ जी चुप हो गयीं ।

—सुना फूफा जी ने.....!

—उनकी चिन्ता न करो, बेटा । वो किसी के मान हैं ?

—पर इस तरह कितने दिन चलेगा ?

—चलेगा जितने दिन चलना होगा । बुआ जी का स्वर आँसुओं में डूबने-उतराने लगा—जो मेरे भाग में लिखा होगा.....आगे कुछ न कह सकीं, आँसू पोंछने लगीं ।

—सच-सच बताना, बुआ जी, तुमने भी कुछ खाया.....!

—खाती हूँ । रोज़ ही खाती हूँ । पल्ले से आँखें ढके हुए बोली ।
इन्द्रदत्त को लगा कि वे झूठ बोल रही हैं ।

—तुम इसी वक्त मेरे घर चलो, बुआ जी । फूफा भी वैसे तो आयेंगे ही, पर आज मैं.....उन्हें लेकर ही जाऊँगा । नहीं तो आज से मेरा भी अनशन आरम्भ होगा ।

—करो, जो जिसकी समझ में आए । मेरा किसी पर जोर नहीं, बस नहीं ।—आँखों में फिर बाढ़ आ गई, पल्ला आँखों पर ही रहा ।

—नहीं बुआ जी ! या तो आज से फूफा जी का व्रत टूटेगा.....!

—कहिए, भाई साहब !—कहते हुए भोला ने प्रवेश किया । माँ

को रोते देख उसके मन में कसाव आया। माँ ने अपने दुख का नाम-निशान मिटा देने का असफल प्रयत्न किया, परन्तु उनके चेहरे पर पड़ी हुई आन्तरिक पीड़ा की छाया और आँसुओं से ताज़ी नहाई हुई आँखें उनके पुत्र से छिपी न रह सकीं। भोला की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। माँ की ओर से मुंह फेरकर चारपाई पर अपना भारी भरकम शरीर प्रतिष्ठित करते हुए उन्होंने अपने ममेरे भाई से पूछा—घर बन गया आपका ?

—तैयारी पर ही है। बरसात से पहले ही कम्पलीट हो जायगा।

—सुना है, नकशा बहुत अच्छा बनवाया है आपने।

इन्द्रदत्त ने कोई उत्तर न दिया।

—मैं भी एक कोठी बनवाने का इरादा कर रहा हूँ। इस घर में अब गुजर नहीं होती।

इन्द्रदत्त खामोश रहे, भोला भी पल भर चुप रहे, फिर बोले—दादा का नया तमाशा देखा आपने ? आज कल तो वे आपके यहाँ ही उठते बैठते हैं। हम लोगों की खूब-खूब शिकायतें करते होंगे।

—तुमको मुझसे ज्यादा जानना चाहिए, पर-निन्दा और शिकायत करने की आदत फूफा जी में कभी नहीं रही। इन्द्रदत्त का स्वर संयत रहने पर भी किञ्चित उत्तेजित था।

—न सही। मैं आपसे पूँछता हूँ, इन्साफ कीजिए आप। यह कौन सा ज्ञान है, कि एक जीव से इतनी नफ़रत की जाय। और...और खास अपने लड़कों और बहुओं से....पोते पोतियों से नफ़रत की जाय....यह किस शास्त्र में लिखा है जनाब, बोलिए !—भोला की उत्तेजना ऐसे खुली, जैसे मोरी से डाट हटाते ही हौदी का पानी बहता है।

इन्द्रदत्त ने शांत, दृढ़ स्वर में बात का उत्तर दिया—तुम बात को गुलत रंग दे रहे हो, भोला। इस प्रकार यह विकट, कहना चाहिए कि घरेलू समस्याएँ कभी हल नहीं हो सकतीं।

—मैं गुलत रंग क्या दे रहा हूँ, जनाब ? सच कहता हूँ, और इन्साफ़ की बात कहता हूँ । ताली हमेशा दोनों हाथों से बजा करती है ।

—लेकिन तुम एक ही हाथ से ताली बजा रहे हो, यानी धरती पर हाथ पीट-पीटकर ।

—क्या ? मैं समझा नहीं ।

—तुम अपने आप ही से लड़ रहे हो और अपने को ही चोट पहुँचा रहे हो, भोला । फूफाजी के सब विचारों से सहमत होना जरूरी नहीं है । मैं भी उनके बहुत से विचारों को ज़रा भी नहीं मान पाता । फिर भी वे आदर के पात्र हैं । वे हमारी पिछली पीढ़ी हैं, जिनकी प्रतिक्रियाओं पर क्रियाशील होकर हमारा विकास हो रहा है । उनकी खामियाँ तो तुम खूब देख लेते हो, देखनी भी चाहिए ; मगर यह ध्यान रहे कि खूबियों की ओर से आँख मूंदना हमारे-तुम्हारे लिए, सारी नई पीढ़ी के लिए केवल हानिप्रद है और कुछ नहीं ।

भोला ने अपनी जेब से सोने का सिगरेट केस निकाला और चेहरे पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ डालकर कहने लगा—मैं समझता था, भाई साहब, कि आपने हिस्ट्री-उस्ट्री पढ़कर बड़ी समझ पाई होगी । — इतना कह कर भोला के चेहरे पर संतोष और गर्व का भाव आ गया । प्रोफ़ेसर इन्द्रदत्त के पढ़े-लिखेपन को दो कौड़ी का साबित कर भोला सातवें आसमान की बुर्जी पर चढ़ गया ।—ढकोसलों में ढकेलने वाली ऐसी पिछली पीढ़ियों से हमारा देश और खास तौर से हमारी हिन्दू सुसाइटी, बहुत 'सफ़र' कर चुकी जनाब । अब चालीस बरस पहले का ज़माना भी नहीं रहा, जो 'पिताहि देवा पिताहि धर्मा' रटा-रटाकर ये लोग अपनी धौंस गाँठ लें । मैं कहता हूँ, आप पुराने हैं, बड़े निष्ठावान हैं, होंगे । अपनी निष्ठा-विष्ठा को अपने पास

रखिए। नया ज़माना आप लोगों की तानाशाही को बरदाश्त नहीं करेगा।

—तुम अगर किसी की तानाशाही को बरदाश्त नहीं करोगे, तो तुम्हारी तानाशाही को भला कौन बरदाश्त करेगा ?

—मैं क्या करता हूँ जनाब ?

—तुम अपने झूठे सुधारों का बोझ हर एक पर लादने के लिए उतावले क्यों रहते हो ?

—बतलाइए, मैंने ऐसा क्या किया है ?

—तुम फूफा जी को चिढ़ाते हो, भोला। मैं आज साफ़-साफ़ ही कहूँगा। तुम और त्रिभुवन, दोनों—इन्द्रदत्त ने सधे स्वर में कहा।

—मैं यह सब बेवकूफी की सी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। भाई-साहब ! जनाब, हमको गोश्त अच्छा लगता है और हम खाते हैं और जरूर खायेंगे। देखें, आप हमारा क्या कर लेते हैं ?

—मैं आपका कुछ भी नहीं कर लूँगा, भोलाशंकर जी। आप शौक से खाइए, मेरे खयाल में फूफा जी ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया वह नहीं खाते, उनके संस्कार ऐसे नहीं हैं, तो तुम यह क्यों चाहते हो कि वह भी तुम्हारी बात, तुम्हारा मत मानने लगें ? रहा यह कि उन्होंने अपना चौका अलग कर लिया या वह तुम लोगों के कारण क्षुब्ध हैं, यह बाने तानाशाही नहीं कही जा सकती। उन्हें बुरा लगता है, बस।

—मैं पूछता हूँ, क्यों बुरा लगता है ? मेरी भी बड़े-बड़े प्रोफ़ेसरों और नामी आलिम-फ़ाज़िलों से दिन-रात की सोहबत है। आपके वेद के ज़माने के ब्राह्मण और मुनि तो गऊ तक को खा जाते थे।

भोला ने गर्दन झटकायी, उनके चेहरे का मांस थुल थुल उठा उनकी सिगरेट जल गयी। इन्द्रदत्त बोले—ठीक है, वे खाते थे। राम

कृष्ण, अर्जुन, इन्द्र वगैरा भी खाते थे, पीते भी थे, मगर यह कहने से तुम उस संस्कार को धो तो नहीं सकते, जो समय के अनुसार परिवर्तित हुआ और वैष्णव धर्म के साथ क़रीब-क़रीब राष्ट्रव्यापी भी हो गया।

—हाँ, तो फिर दूसरा संस्कार भी राष्ट्रव्यापी हो रहा है।

—हो रहा है, ठीक है।

—तो फिर दादा हमारा विरोध क्यों करते हैं ?

—भोला, हम फूफा जी का न्याय नहीं कर सकते। इसलिए नहीं कि हम अयोग्य हैं, वरन् इसलिए कि हमारे न्याय के अनुसार चलने लिये के उनके पास अब दिन नहीं रहे। आदत बदलने के लिए आग़िरी वक्त में अब उत्साह भी नहीं रहता।

—मैं पूछता हूँ, क्यों नहीं रहता ?

—यह सरासर ज्यादाती है तुम्हारी। वह बीता युग है, उसपर हमारा वश नहीं। हमारा वश केवल वर्तमान और भविष्य पर ही हो सकता है। विगत युग की मान्यताओं को उस युग के लिए हमें जैसे का तैसा ही स्वीकार करना होगा....पहले बात सुन लो, फिर कुछ कहना....हाँ तो मैं कह रहा था कि हमें अपने पुरखों की खूत्रियाँ देखनी चाहिए, ताकि हम उन्हें लेकर आगे बढ़ सकें। उनकी त्रामियों को या सीमाओं को समझना चाहिए, जिनसे कि हम आगे बढ़ कर अपनी नयी सीमा स्थापित कर सकें। उनके ऊपर अपनी सुधारवादी मनोवृत्ति को लादना घोर तानाशाही है ?

—और वो जो करते हैं, वह तानाशाही नहीं है।

—अगर तानाशाही है, तो तुम उसका ज़रूर विरोध करो। मगर नफ़रत से नहीं। वे तुम्हारे अत्यन्त निकट के सम्बन्धी हैं, तुम्हारे पिता हैं। इतनी श्रद्धा तुम्हें करनी ही होगी, उन्हें इतनी सहानुभूति तुम्हें देनी ही होगी।

इन्द्रदत्त बहुत शान्त भाव से पालथी मारकर बैठे हुए बातें कर रहे थे ।

भोला के चेहरे पर कभी चिढ़ और कभी लापरवाही--भरी अकड़ के साथ सिगरेट का धुआँ लहराता था । इन्द्रदत्त की बात सुनकर तमककर बोला—अ--अ--आप चाहते हैं कि हम गोश्त खाना छोड़ दें ?

—दोस्त, अच्छा होता कि तुम अगर यह मांस-मछली वगैरह के अपने शौक कम से कम उनके ओर बुआजी के जीवन-काल में घर से बाहर ही पूरे करते । यह चोरी के लिए नहीं, उनके लिहाज़ के लिए करते, तो परिवार में और भी शोभा बढ़ती । खैर, झगड़ा इस बात पर तो है नहीं । झगड़ा तो तुम्हारी.....

—जूलियट की वजह से है । वह उनके कमरे में जाती है, या अभी हाल ही में उसने सरस्वती जी के मंदिर में बच्चे पैदा किये.... तो, तो आप एक बेजुबान जानवर से भी बदला लेंगे, जमाव ? यह आपकी इन्सानियत है ?

—मैं कहता हूँ, तुमने उसको पाला ही क्यों ? कम से कम माँ-बाप ज़रा सा मान तो रखा होता ।

—इसमें मान रखने की क्या बात है, भाई साहब ? भोला उठकर छोटी सी जगह में तेज़ी से अकड़ते हुए टहलने लगे । चारपाई से कमरे के एक कोने तक जाकर लौटते हुए रुककर कहा—हमारा शौक है, हमने किया । और कोई बुरा शौक तो है नहीं । साहब औरों के फ़ादर-मदर्स होते हैं, तो लड़कों के शौक पर खुश होते हैं ...और एक हमारी किस्मत है कि.....

—तुम सिर्फ अपनी ही खुशी को देखते हो, भोला । तुमने यह नहीं देखा कि फूफा जी कितने धैर्य और संयम से तुम लोगों की इन हरकतों को सहन करते हैं ।

—झाक-धूल है.....संयम है ! हज़ारों तो गालियाँ दे डालीं हम लोगों को !

—और बदले में तुमने उनके ऊपर कृतिया छोड़ दी ?

—ऐसी ही बहुत शुद्धता का घमण्ड है, तो अपनी तरफ़ दीवार उठवा लें । हम जो-जो हमारे जी में आएगा करेंगे । ओर अब तो बढ़-बढ़कर करेंगे ।

—यह तो लड़ाई की बात हुई, समझोता नहीं हुआ ।

—जी, हाँ, हम तो खुले आम कहते हैं कि हमारा और दादा का समझौता नहीं हो सकता । इस मामले में मेरी और त्रिभुवन की राय एक है । मगर वे हमारे 'प्रोग्रेसिव' ख्यालात को नहीं देख सकते, तो उनके लिए हमारे घर में कोई जगह नहीं है ।

—भोला !—बड़ी देर से गर्दन झुकाए खामोश बैठी हुई माँ ने काँपते स्वर में और भीख का सा हाथ बढ़ाते हुए कहा—बेटा, उनके आगे ऐसी बात भूल से भी न कह देना । तुम्हारे पैरों

—कहूँगा, और हज़ार बार कहूँगा ! अब तो हमारी उनकी ठन गयी । वो हमारे लड़कों-बच्चों का पहनना-ओढ़ना नहीं देख सकते, हँसना-खेलना नहीं बर्दाश्त कर सकते, हम लोगों को बर्दाश्त नहीं कर सकते, तो मैं भी उनके धर्म को ठोकर मारता हूँ । उनके ठाकुर, पोथी, पुराण सब मेरे जूते की नोक पर हैं ।

माँ की आँखों से बूँदें टपक पड़ीं । उन्होंने अपना सिर झुका लिया । भोला की यह बदतमीज़ी इन्द्रदत्त को बुरी तरह तड़पा रही थी । स्वर ठन्डा रखने का प्रयत्न करते सनक भरी हँसी हँसते हुए बोले—अगर तुम्हारी यही सब बातें नए ओर 'प्रोग्रेसिव' विचारों का प्रतिनिधित्व वाक़ूई करती हों, इसी से मनुष्य सुशिक्षित और फ़ैशनेबिल माना जाता हो, तो मैं कहूँगा कि, भोला, तुम और तुम्हारी ही तरह

का सारा नया ज़माना जंगली है। बल्कि उनसे भी गया गुजरा है। तुम्हारा नया जमाना न नया है न पुराना। तुम्हारे विचार नए तो ख़र हैं ही नहीं, अंग्रेज़ी दासता के अवशेष चिन्ह हैं। और तुम्हारी सभ्यता सामन्तों, पैसे वालों के खोखले ज़ोम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तुम्हारे विचार इन्सानों के नहीं, हैवानों के हैं।

—इन्द्रदत्त स्वाभाविक रूप से उत्तेजित हो उठे।

—ख़र, आपको अपनी इन्सानियत मुबारक रहे। हम हिपात्रेट लोगों को ख़ूब जानते हैं और उन्हें दूर ही से नमस्कार करते हैं। भोलाशंकर तमककर खड़े हुए, तेज़ी से बाहर चले, दरवाजे पर पहुँचकर माँ से कहा—तुम दादा को समझा देना, अम्मा। मैं अनशन की घमकियों से ज़रा भी नहीं डरूँगा। जान ही तो देंगे तो मरें न। मगर मैं उनको अपने घर में यों नहीं मरने दूँगा। जाँय गंगा किनारे मरें....यहाँ उनके लिए अब जगह नहीं है।

—पर यह घर अकेला तुम लोगों का ही नहीं है।

—ख़र, यह तो हम कोर्ट में देख लेंगे, अगर जरूरत पड़ी तो। लेकिन मेरा अब उनसे कोई वास्ता नहीं रहा।

भोलाशंकर चले गए। बुआ जी चुपचाप सिर झुकाये टप्-टप् आँसू बहाती रहीं। इन्द्रदत्त उत्तेजित मुद्रा में बैठे थे। जिसके पास किसी वस्तु विशेष का अभाव रहा हो, उसके पास वह वस्तु थोड़ी सी ही हो जाय, तो बहुत मालूम पड़ती है। इन्द्रदत्त के लिए इतना क्रोध और उत्तेजना इसी तरह अधिक प्रतीत हो रही थी। पल भर चुप रह कर आवेश में आ बुआ जी के हाथ पर हाथ रखते हुए कहा—तुम और फूफा जी मेरे घर चलकर रहो, बुआ! वह भी तो तुम्हारा ही घर है।

—तुम अपने फूफा जी से भोला की बातों का जिकर न करना, बेटा।

—नहीं।

—तुम अपने फूफा जी का किसी तरह से यह बरत तुड़वा दो, बेटा तुम्हें बड़ा पुन्न होगा। तुम्हें मेरी आत्मा उठते-बैठते असीसेगी, मेरा भैया।

—मैं इसी इरादे से आया हूँ। तुम भी चलो, बुआ, तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम भी.....!

—अरे, मेरी चिन्ता क्या है ?

—हाँ तुम्हारी चिन्ता नहीं। चिन्ता तो तुम्हें और फूफा जी को करनी है.....मेरी ओर से।

—तुम दोनों के भोजन कर लेने तक मैं भी अपने प्रण से अटल रहूँगा।

बुआ जी एक क्षण चिन्ता में पड़ गईं। फिर मीठी वाणी में समझा कर कहा—देखो, भैया इन्दर, मेरे लिए जैसे भोला-तिरभुवन, वैसे तुम। जैसा ये घर, वैसा वो। आज तुम अपने फूफा जी को किसी तरह जिमा लो। उनके बरत टूटने की खबर सुनते ही, तुम्हारी कसम, मैं आप ही टाकुर जी का भोग पा लूँगी। लेकिन इसी घर में। किसी के जी को कलेस हो बेटा, ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। क्या कहूँ, तेरे फूफा जी का करोध मेरी कुछ चलने नहीं देवे हैं। अपने जी को कलेस देवे हैं, सो देवे हैं, बाकी बच्चों के जी को जो कलेस लगै है, उसके लिए तो कहा ही क्या जाय ? कलजुग-कलजुग की तरै से चलेगा, भैया !

इन्द्रदत्त कुछ देर तक बुआ के मन की घुटन का खुलना देखते रहे।

(५)

पंडित देवधर जी भट्ट ने नित्य-नियम के अनुसार झुटपुटे समय अपने भतीजे के आँगन में प्रवेश कर आवाज़ लगायी — इन्द्रदत्त !

—आइए, फूफा जी !

सँकड़े, टूटे सीलन-भरी लखौरी-इंटों पर खड़ाऊँ की खट-खट

चढ़ती गयी। इन्द्रदत्त कटहरे के पास खड़े थे। जीने के दरवाजे से बाहर आते हुए पंडित देवधर उन्हें दिखलाई दिए। उनके भस्म लगे कपाल और देह पर पड़े जैशिव छाप के दुपट्टे में उनकी देह से एक आभा-सी फूटती हुई उन्हें महसूस हो रही थी। फूफा जी के आते ही घर बदल गया। उन्हें देखकर हर रोज ऐसा ही महसूस होता है, पर आज की बात तो न्यारी ही थी। फूफा जी के चार दिनों का व्रत आज उनके व्यक्तित्व को इन्द्रदत्त की दृष्टि में और भी अधिक तेजोमय बना रहा था। फूफा जी को लेकर आज उनका मन अत्यन्त भावुक हो रहा था, पीड़ा पा रहा था। इन्द्रदत्त ने अनुभव किया कि फूफा जी के चेहरे पर किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं, भूख की थकान नहीं। चेहरा सूखा, कुछ उतरा हुआ अवश्य था; परन्तु मुख की चेष्टा नहीं बिगड़ी थी। पंडित देवधर की यह बात इन्द्रदत्त को बहुत छू रही थी।

पंडितजी आकर चौकी पर बैठ गए। इन्द्रदत्त उनके सामने मूढ़े पर बैठे। घर बनने के कारण उनका बैठका उजड़ गया था। अभ्यागत के आने पर इन्द्रदत्त संकोच के साथ इसी टूटे कमरे में उसका स्वागत करते। फूफा जी से तो खैर संकोच नहीं। पंखे का रुख उन्होंने उनकी ओर कर दिया और फिर बैठ गए। कुछ देर तक दोनों ओर से त्रामोशी रही, फिर फूफा जी ने बात उठायी—तुम अभी घर गए थे, सुना।

—जी हाँ।

—तुम्हारी बुआ मुझसे कह रही थीं। मैंने यह भी सुना है कि तुम मेरे कारण किसी प्रकार का बाल हठ करने की धमकी भी दे आए हो।

पंडित देवधर ने अपना डुपट्टा उतार कर कुर्सी पर रख दिया। पालथी मारकर वे सीधे तने हुए बैठे थे। उनका प्रायः पीला पड़ा हुआ

गोरा बदन उनके बैठने के सधाव के कारण ही 'स्पिरिचुअल' जँच रहा था, अन्यथा उनका यह पीलापन उनकी रोगी अवस्था का भी परिचय दे रहा था ।

इन्द्रदत्त ने सव-सधकर कहना शुरू किया—मेरा हठ स्वतंत्र नहीं, बड़ों के हठ में योगदान है ।

—इन बातों से कुछ लाभ नहीं, इन्द्र । मेरी गति के लिए मेरे अपने नियम हैं ।

—और मेरे अपने नियम भी तो हो सकते हैं ।

—तुम्हें स्वाधीनता है ।

—तब मैंने भी यदि अनशन का फैसला किया है, तो गलत नहीं है ।

—तुम अने प्रति मेरे स्नेह पर बोझ लाद रहे हो । मैं आत्म-शुद्धि के लिए व्रत कर रहा हूँ... पुरखों के साधना-ग्रह की जो यह दुर्गति हुई है, यह मेरे ही किसी पाप के कारण...अपने अन्तःकरण की गंगा से मुझे सरस्वती का मंदिर धोना ही पड़ेगा । तुम अपना आग्रह लौटा लो, बेटा ।

एक मिनट के लिए कमरे में फिर सन्नाटा छा गया, केवल पंखे की गूँज ही उस खामोशी में लहरें उठा रही थी ।

इन्द्रदत्त ने शान्त स्वर में कहा—एक बात पूछूँ ? मंदिर में कुत्ते के प्रवेश से यदि भगवती अपवित्र हो जाती हैं, तो फिर घट-घट व्यापी ईश्वर की भावना बिलकुल झूठी है, एक ईश्वर पवित्र और दूसरा अपवित्र क्यों माना जाय ?

पंडित देवधर चुप बैठे रहे । फिर गंभीर होकर कहा—हिन्दू धर्म बड़ा गूढ़ है । तुम इस झगड़े में न पड़ो ।

—मैं इस झगड़े में न पड़ूँगा, फूफा जी, पर एक बात सोचना

हैं... भगवान राम अगर प्रेम के वश में होकर शबरी के जूठे बेर खा सकते थे, हिन्दू लोग यदि इस आख्यान में विश्वास रखते हैं, तो फिर छूत-अछूत का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। युधिष्ठिर ने अपने साथ-साथ चलने वाले कुत्ते के बिना स्वर्ग में जाने तक से इन्कार कर दिया था। यह सब कहानियाँ क्या हिन्दू-धर्म की महिमा बखानने वाली नहीं हैं ? क्या यह महत् भाव नहीं है ? फिर इनके विपरीत छुआ-छूत के भय से छुईमुई होने वाले गूढ़ धर्म की महिमा को आप क्यों मानते हैं ? इन रूढ़ियों से बँधकर मनुष्य क्या अपने को छोटा नहीं कर लेता ?

पंडित जी शान्तिपूर्वक सुनते रहे। इन्द्रदत्त की भय हुआ कि बुरा न मान गए हों। तुरन्त बोले—मैं किसी हद तक उत्तेजित जरूर हूँ, लेकिन जो कुछ पूछ रहा हूँ, जिज्ञासु के रूप में ही।

—ठीक है।—पंडित जी बोले—हमारे यहाँ आचार की बड़ी महिमा है ! मनुस्मृति में आया है “कि आचारः प्रथमो धर्मः”, जैसा आचार होगा, वैसे ही विचार भी होंगे। तुम शुद्धाचरण की बुरा मानते हो ?

—जी नहीं।

—तब मेरा आचार क्यों भ्रष्ट करा रहे हो ?

—ऐसी धृष्टता करने का विचार स्वप्न में भी मेरे मन में नहीं आ सकता। हाँ, आपसे क्षमा माँगते हुए यह जरूर कहूँगा कि आप के आचार नए युग को विचार शक्ति नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए उनका मूल्य मेरे लिए कुछ नहीं के बराबर है। मैं दुविनीत नहीं हूँ, फूफा जी, परन्तु सच-सच यह अनुभव करता हूँ कि दुनिया आगे बढ़ रही है और आपका दृष्टिकोण व्यर्थ के रोड़े की तरह उसकी गति को अटकाता है।...पर इस समय जाने दीजिए...मैं तो यही निवेदन करने घर गया था और यही मेरा आग्रह है कि आप भोजन कर लें।

पंडित जी मुस्कराए। इन्द्रदत्त के मन में आशा जागी। पंडित जी बोले—करूँगा, एक शर्त पर।

—आज्ञा कीजिए।

—जो मेरे, अर्थात् पुरानी परिगाटी के यम, नियम, संयम आदि हैं, वे आज से तुम्हें भी निभाने पड़ेंगे। जिनका मूल्य तुम्हारी दृष्टि में कुछ नहीं है, वे आचार-विचार मेरे लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान हैं।

इन्द्रदत्त स्तम्भित रह गए। वे कभी सोच भी नहीं सकते थे कि फूफा जी साहसा अनहोनी शर्त से उन्हें बाँधने का प्रयत्न करेंगे। पूछा—कब तक निभाना पड़ेगा ?

—आजीवन।

इन्द्रदत्त किंत्तर्व्यविमूढ़ हो गए। जिन नियमों में उनकी आस्था नहीं, जो चीज उनके विचारों के अनुसार मनुष्य को अन्धविश्वासों से जकड़ देती है, और जो भारतीय संस्कृति का कलंक है, उनसे उनका प्रबुद्ध मन भला तयोंकर नँध सकता है ? हाँ कहें, तो कैसे कहें ? उन्होंने इस व्रत, नियम, बलिदान, चमत्कार और मिथ्या विश्वासों से भरे हिन्दू धर्म को समाज पर घोर अत्याचार करते देखा है। अपने-आपको तरह-तरह से प्रपीड़ित कर धार्मिक कहलानेवाला व्यक्ति इस देश को रसातल में ले गया। इस कठोर जीवन को साधने वाले 'शुद्धाचरणी' ब्राह्मण धर्म ने इस देश की स्त्रियों और हीन कहलानेवाली जातियों को सदियों तक दासता की चक्की में दुरी तरह पीसा है, और अब भी बहुत काफ़ी हद तक पीस रहा है। हो सकता है कि मनुष्य की चेतना के उगते युग में इस शुद्ध कहलाने वाले आचार ने अंधकार में उन्नत विचारों की ज्योति जगायी हो, पर अब तो सदियों से इसी झूठे धर्म ने औसत भारतवासी को दास, अंधविश्वासी, और असीम रूप से अत्याचारों को सहन करने-वाला, झूठी दैवीशक्तियों पर यानी अपनी ही धोखा देनेवाली,

लुभावनी, असम्भव, कल्पनाओं पर विश्वास करनेवाला, झूठा भाग्यवादी बनाकर देश की कमर तोड़ रखी है। इसने औसत भारतवासी से आत्म-विश्वास छीन लिया है। इस जड़ता के खिलाफ़ उपनिषद् जागे, मानवधर्म जागा, योग का ज्ञान जागा, बौद्ध, भागवतधर्म जागा, मध्यकाल का सन्त आन्दोलन उठा और आज के वैज्ञानिक युग ने तो इसे एकदम निस्सार सिद्ध कर सदा के लिए इसकी कब ही खोद दी है। यह जड़ धर्म कभी भारत को महान नहीं बना सका होगा। भारत की महानता उसके कर्मयोग में है, उसके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण में है, व्यास-वाल्मीकि आदि के परम उदार भावों में है। प्राचीन भारत के दर्शन, न्याय वैशेषिक, साहित्य, शिल्प, संगीत आदि इस जड़ धर्म की उपज हरगिज़ नहीं हो सकते। फिर भी यह जड़ता भारत पर असें से भूत की तरह छापी हुई है। इसी से घृणा करने के कारण आज का नया भारतीय बिना जाँच-पड़ताल किए, अपनी सारी परम्पराओं से घृणा करते हुए, सिद्धान्तहीन, आस्थाहीन और निष्क्रिय हो गया है.....नहीं, वे फूफा जी का धर्म हरगिज़ न निभा सकेंगे, हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं ! पर वे भोजन कैसे करेंगे ? बुआ जी फिर कैसे और कब तक भोजन करेंगी ? कैसी विडम्बना है ? दो मनुष्यों की मोत की नैतिक जिम्मेदारी उनके ऊपर आवेगी।

पंडित देवधर ने उन्हें मौन देखकर पूछा—कहो, भोजन कराओगे मुझे ?

—जी....मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ।

—स्पष्ट कहो, मेरा धर्म ग्रहण करोगे ?

—फूफा जी, आप बहुत माँग रहे हैं। मेरा विश्वास माँग रहे हैं। मैं आपके धर्म को युग का धर्म नहीं मानता, अपना नहीं मानता।

—मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता से प्रसन्न हूँ। तुम धार्मिक हो, इसी तरह अपने से मुझको पहिचानों। मैं भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यद्यपि

तुम्हारे सत्संग से मैंने इतने दिनों में यह समझ लिया है कि मेरा युग, मेरा धर्म अब सदा के लिए लोप हो रहा है। फिर भी मेरी अन्तिम सांस तक तो हरगिज नहीं। मेरी आस्था तपः पूत है। तुम्हारा कल्याण हो। सुखी हो, बेटा.... अच्छा तो अब चलूँ—

—परन्तु मेरा अनशन का निश्चय अडिग है, फूफा जी। मैं आपके चरण छूकर कह रहा हूँ।

—पैर छोड़दो बेटे, इन पैरों, मैं पहले ही जड़ता समा चुकी है... और अब तो जीव के साथ ही मिटेगी, अन्यथा नहीं।... खैर, कल विचार करना अपने अनशन पर।

अंतिम वाक्य पंडित जी ने इस तरह कहा कि इन्द्रदत्त को करारा झटका लगा। पर वे मौन रहने पर विवश थे। पंडित देवधर चलने लगे इन्द्रदत्त के मन में भयंकर तूफान उठ रहा था। वे हार गए। बुआ जी को क्या उत्तर देंगे ? इस अगति का अन्त क्या होगा ? क्या वे फूफा जी की बात मान लें ?.... कैसे मान लें ? यह ठीक है कि फूफा जी अपने धर्म पर किस प्रकार एकनिष्ठ हैं, यह एकनिष्ठता उन्हें बेहद प्रभावित करती है, फिर भी उनके धर्म को वह क्योंकर स्वीकार करें ?

पंडित देवधर जी जीने पर पहुँचकर रुके। इन्द्रदत्त उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। पंडित जी घूमकर बोले— तुम्हारी मान्यताओं में मेरी आस्था नहीं है, इन्द्र, फिर भी मैं उसके वास्तविक पक्ष को कुछ-कुछ देख अवश्य पा रहा हूँ। एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ। तुम भोला, त्रिभुवन के धर्म को आज का या किसी भी युग का वास्तविक धर्म मानते हो ?

—जी नहीं, उनका कोई धर्म ही नहीं है।

—तुम्हारा कल्याण हो, बेटे। धन मद से जन्मे इस खोखले धर्म से सदा लड़ना, जैसे मैं लड़ा। तुम अपने मत के अनुसार लड़ो, पर

लड़ो अवश्य । यह आस्थाहीन, दम्भ-भरा अदार्शनिक, अधार्मिक जीवन लोक के लिए अकल्याणकारी है । बोलो वचन देते हो ?

—मैं आपको अपना विश्वास देता हूँ ।— कहकर इन्द्रजीत ने फूफा जी के चरण छू लिए । खड़ाऊँ की खट्-खट् जीने से उतर गयी, आँगन पार किया, दूर चली । इन्द्रदत्त आकर कटे पेड़ से अपने पलंग पर गिर गए ।

नया युग पुराने युग से स्वेच्छा से विदा हो रहा था; पर विदा होते समय कितना प्रबल मोह था, और कितना निर्मम व्यवहार भी ।

अगति गति

बम्बई, ९ अगस्त सन् १९४२ ई० ।

शहर का टेलफनी कनेक्शन सरकारी हुक्म पर रात को डेढ़ बजे ही काट दिया गया था । सुबह साढ़े चार बजे महात्मा गाँधी, राष्ट्रपति अबुलकलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू, वल्लभभाई पटेल और कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के बीस सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए ।

कांग्रेस के तीसरे दिन का खुला अधिवेशन स्थगित ।

जेल जाते हुए महात्मा के अन्तिम शब्द थे :—

“Do or die !” (करो या मरो) ।

राष्ट्रपति ने कहा : “अब हिन्दुस्तान का बच्चा बच्चा राष्ट्रपति है ।”

चालीस करोड़ राष्ट्रपति कुछ कर दिखाने या मर जाने के लिए कमर कस कर खड़े हो गए । पराये हाथों से अपनी आज़ादी छीनने के लिए हिन्दुस्तान बेकरार हो उठा । ‘भारतवर्ष खाली करो’ का नारा देश भर में गूँज उठा । दिल्ली के वायसराय भवन के सामने प्रदर्शन किया गया । बम्बई, पूना, अहमदाबाद, लखनऊ, बनारस, बलिया और देश के छोटे-बड़े शहरों में अंग्रेजी फौज गोली और लाठियाँ चला कर आज़ादी के दीवानों का जोश कुचलने की कोशिश करने लगी । टाइप और साइक्लो-स्टाइल किए हुए पर्चे घर-घर में पहुँचने लगे, जिनमें

चालीस कोटि नेताओं के लिए आदेश रहता था : 'रेलों, सड़कों, ट्राम की पटरियों पर लेट जाओ, सवारी गाड़ियों का आना जाना रोक दो । ट्रेनों की जंजीरें खींचो । टेलीग्राफ, टेलीफोन के तार और खम्भे उखाड़ फेंको, सड़कों में खाइयां खोदो, रेल की पटरियां उखाड़ो । सरकारी नौकरों, पोस्टमैनों और पुलिसमैनो को अपनी गुलामी से स्तीफा देने के लिए मजबूर करो ।' स्कूली लड़के-लड़कियों के लिए आदेश था कि गली मुहल्लों में अपने लोगों को व्यापार करने से रोको । कवि प्रदीप का गीत 'चल-चल-रे नौजवान' हर दीवाने नौ-जवान को देश के लिए आगे बढ़ाता था । हिन्दुस्तान की जवानी ने नगर-नगर, गाँव-गाँव में ब्रिटिश साम्राज्य के आतंक को धाराशायी कर दिया । अंग्रेजों के लिए, अपनी गुलामी के लिए घृणा की तीव्र लहर फैल गई । जगह-जगह से गैर-कानूनी रेडियो सरकार के खिलाफ आग उगलते हुए अपने आन्दोलन का प्रचार करने लगे । जनता का जोश अभूतपूर्व था, ऐसा लगता था कि कुछ ही दिनों में भारतवर्ष के इतिहास का नया पृष्ठ खुल जायगा ।

ब्रिटिश साम्राज्य का दमनचक्र बर्बरता की अंधी महाशक्ति को लेकर चल पड़ा । इसबार केवल लाठियों और गोलियों का ही खेल नहीं था, गोरे सिपाहियों को छूट दे दी गई थी कि किसी भी घर में घुस जाओ, कुछ भी करो, सब माफ है । हमारी प्रान्तीय सरकार के अण्डर सेक्रेटरी मि० निकल्सन अपनी स्वदेशी फौज की वीरता और हमारी स्वदेशी पुलिस की नमकहलाली के जौहर देखने के लिए प्रांत भर में तूफानी दौरा कर रहे थे । हमारे छोटे से नगर को भी, जिसका मैं उन दिनों डिप्टी कमिश्नर और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट था, उन्होंने अपने बहुमूल्य बूटों की धूलि से पवित्र किया था ।

मि० निकल्सन ब्रिटिश जाति के उन प्रखर बुद्धि वाले हुकूमतशाहों में थे जिनकी मौलिक सूझ के फलस्वरूप हमारे प्रांत में दस आने रोज

के दर से गुण्डों का अतिरिक्त पुलिस दल बनाया गया था। उन्हें उस समय भारतीय अफसरों और पुलिस पर पूरा-पूरा विश्वास न था। उनके आदेशानुसार एक गोरा लारी के साथ दो ठसाठस भरी हुई गुण्डा लारियां मेरे जिले के हर गांव को राजभक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए भेजी गई थीं। वे गांव के पुरुष वर्ग को एक लाइन में मुर्गा बनाकर बैठाते थे, संगीनों की नौक उनकी छातियों पर अड़ा कर वे पहरा देते थे। वे नन्हें-मुन्ने बच्चों को संगीनों में पिरो कर 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' गाते थे, उन्हें चीर कर दो टुकड़े कर देते थे। वे ओरतों से बड़ी दिलेरी के साथ, राक्षसी उल्लास के साथ उनकी अनाथ अस्मत का जज़िया वसूल करते थे, उनकी गिरस्ती को लुटते थे, उनके घरों में आग लगाते थे, और आगे बढ़ जाते थे। एक गांव से दो गोरे तमाम मर्द-मुर्गों की नाकें काट कर तोहफ़े के तौर पर मि० निकल्सन के लिए बटोर लाये थे। उन्हें देख कर मि० निकल्सन जी खोल कर हंसे थे। अपने स्वदेश बन्धुओं को हिस्की की दो-दो बोतलें इनाम में दी थीं।

मेरी ओर मुखातिब होकर मेरे आका ने कहा था—'शङ्कर, तुम्हारी औपन्यासिक कल्पनायें तुम्हें कभी भी नोबुल प्राइज़ न दिला सकेंगी। उन्हें ताक पर रख दो। लेकिन मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूं कि अगर कभी भी एक ऐसी अनोखी सूझ से तुम मुझे खुश कर सके तो मैं तुम्हें तरकी दिला दूंगा।'।

'थैंक यू सर। मैं आपको संतुष्ट करने की पूरी कोशिश करूंगा सर।' अपमान का ज़हर पीकर मेरे स्वाभिमान का भूत बोला। मैं मन ही मन नपुंसक क्रोध के प्रखर उत्ताप से जल रहा था। इच्छा होती थी निकल्सन को, गोरो को, देश के सारे दुश्मनों को, मौत के घाट उतार दूं। इच्छा होती थी मुझमें एक ऐसा पागलपन समा जाय जिससे कि पेट की चिन्ता और परिवार की आड़ में छिप कर क्रैद करने वाले अपने मोटर, अर्दली, सलामों और कुर्सी के रोब को एक पल में ही चूर-चूर कर दूं।

निकल्सन गांधी, नेहरू आदि को गन्दी से गन्दी गालियां दे रहा था। मैं खड़ा सुन रहा था। वह हिन्दुस्तान को चिर असभ्य और शाश्वत गुलामी का अधिकारी सिद्ध कर रहा था। मैं चूप खड़ा सुन रहा था। और यहीं तक मेरी सहनशीलता, मेरी गुलामी ने अपनी सीमा स्थापित नहीं की। वह और भी आगे बढ़ी। उसी दिन शाम को निकल्सन के दिमाग में नई सूझ आई। मुझे हुक्म मिला कि कर्पयू आर्डर का एलान करते हुए तुरन्त पर्व छपाये जायें। पर्व छोटे साइज के हैण्डबिल से बड़े न हों। रात के ग्यारह बजे के बाद वे पर्व शहर की दीवारों पर चिपकाए जायें। यह एलान हो कि अगले चोबीस घंटे के कर्पयू में जो शख्स भी गली या सड़कों में घूमता दिखलाई पड़ेगा, उसे ब्रिला उजू जान से मार दिया जायगा।

पर्व छपे। चिपकाए गए। पर्वों में छपे न्याय को डिमाक्रेटिक सिद्ध करने के लिए कोतवाली के रोज़नामचे से लेकर मेरे दफ्तर की फाइलों तक जरूरी कागजी कार्रवाई पूरी की गई। पुलिस मिलिटरी को हुक्म मिल गया।

शहर की रोज़मर्राह भुबह को शुरू हुई, और निकल्सन का खेल शुरू हुआ। हिन्दुस्तानी खून का प्यासा हैवान उस दिन बहुत तड़के ही उठ बैठा था। शहर में आम तौर पर किसी को भी कर्पयू की ठीक ठीक सूचना नहीं थी। खबर फैलने से पहले ही, घण्टे भर में, शहर के कोने कोने में कितने ही निरपराध जान से मार दिये गए। अखबारी हाकर, जलेबी-खोमचे वाले, दूधवाले, नदी स्नान के लिए जाते हुए बूढ़े, औरतें, बच्चे थोड़ी ही देर में लाशें बनकर गली-सड़कों पर बिछ गए।

और मैं केवल विद्रोह के अन्तर्दाह से ही जलता रहा।

दो घण्टे बाद निकल्सन को विदाई देने के लिए स्टेशन भी जाना ही पड़ा। उसे शहर में आकर शासन-व्यवस्था का सही निर्देश करने के लिए धन्यवाद भी देना ही पड़ा। वह बहुत खुश था। बड़े संतोष

के साथ उसने कहा :—“I had a jolly good fun this morning. I myself shot down twenty-four niggers—your countrymen, Shanker. Are you happy ?” (आज सबेरे मेरा बड़ा ही अच्छा मनोरंजन हुआ । खुद मैंने चौबीस कालों को मारा—तुम्हारे देशवासियों को, शङ्कर । तुम प्रसन्न हुए न ?)

“Yes Sir. That was very kind of you.” (हाँ हुजूर ! आपने बड़ी कृपा की ।)

निकल्सन जी खोल कर हँसा, फिर बोला :—‘ मैं तुम्हें एक ‘टिप’ देता हूँ शङ्कर । अपने अगले उपन्यास में मेरे आदर्श पर एक चरित्र की रचना करना । दिखाना कि किस तरह एक अंग्रेज़ अपने स्वदेश के अधिकारों की रक्षा के लिए शौर्य और साहस का परिचय देता है ।’

निकल्सन के उद्देश ने आरी बनकर मेरे लेखक को चीरना शुरू कर दिया । सच कहता हूँ कि उसके बाद जब कभी भी लिखने का विचार मन में आता था, निकल्सन की छाया उन्मत्त होकर मेरी नज़रों के आगे नाच उठती थी । जिस ‘साहित्याराधना’ का यश मेरे मोटर, अर्दली और कुर्सी के रोब को दुबाला करता हुआ मुझे चार चाँद वाला राजकुट पहनाता था, वही यश मेरे मन का कलंक बन गया । मैंने चिढ़ कर लिखना पढ़ना ही छोड़ दिया । सोचने लगा, क्या मेरी साहित्याराधना की यही सार्थकता है कि एक स्वार्थी सत्ताधारी के दमनचक्र को स्वदेश प्रेम, साहस और शौर्य का प्रतीक बनाकर उसे अपने देश के सामने उपस्थित करूँ ? ...लेकिन इसके विपरीत न्याय का ठोस आदर्श ओर मैं रख ही क्या सकता था ? जो व्यक्ति निकल्सन की गुलामी करता हुआ उसकी आज्ञा पर अपने देश-वासियों की निर्मम हत्या का षड्यन्त्र रचता है, अपने देश की सभ्यता और संस्कृति का जानकार—उसका साहित्यिक ठेकेदार बनकर भी एक मिथ्याभिमानी विदेशी शासक के मुख से अपनी चिर असभ्यता और शाश्वत गुलामी की बात सुनकर भी जो मौन रहता है, खुशामद के रसातल में गिर कर हत्यारे को

हत्याकाण्ड के लिए धन्यवाद देता है, उस व्यक्ति की कलम से निकल्सन नहीं तो क्या उन लाखों अमर शहीदों का आदर्श अंकित होगा जिन्होंने ने न्याय के लिए हँस हँस कर अपना सर्वस्व बलिदान किया है ?

अपने कमरे में किताबों की अलमारियां मुझे खलने लगीं। मुझे अपने कमरे में बैठना खलने लगा, घर खलने लगा, सुमित्रा और बच्चे खलने लगे। जितनी देर तक दफ्तर में रहता, हाकिम-हुक्कामों और नगर के छोटे-बड़े लोगों की सलामें कबूल करता रहता, उतनी देर तक तो मैं मजबूरी के साथ अपने आपको भुलाए रखने की कोशिश करता था। बाकी हर लमहा मुझे काटता था, मैं अपने आप में नहीं समा पाता था।

[२]

मीलों दूर हवाई-अड्डे की घूमती हुई सर्चलाइट थोड़ी देर के बाद अँधेरे में खोये हुए दरख्त की ऊँचाई को छू जाती थी, मेरा ध्यान बांध जाती थी। पहाड़ों के नीचे सामने की झील, किनारे लगे पेड़ों का झुरमुट, सारा सुहावना दृश्य अब घने अंधकार में छिप गया था। बहुत देर तक उस ओर आँखें गड़ा कर खोये रहने के बाद करीब करीब अंधापन-सा महसूस कर, उचट कर, मेरी आँखें टिमटिमाते हुए लुब्धक तारे से उलझने लगी थीं कि सर्चलाइट की लकीर ने बांध लिया। पहले अच्छा नहीं लगा। मेरे डाक बैगले का दरख्त अपनी ऊँचाई को लिए हुए अचानक फिर रोगनी की सतह पा गया, शायद यही मुझे अच्छा नहीं लगा। मेरी सोई हुई चिड़चिड़ाहट जागी। नज़रें सितारों में शान्ति पाने लगीं। फिर लाइट आई, फिर ध्यान बँधा। फिर प्रतीक्षा होने लगी। प्रकाश अच्छा लगने लगा। प्रकाश नव आशा का प्रतीक बना। सूने दिमाग में शब्दों की चहल-पहल फिर शुरू हुई, जैसे रात भर का सोया शहर जागा हो। मैं स्फूर्ति के साथ सोचने लगा कि अपने चरित्र की उन ऊँचाइयों को एक दिन अवश्य पाऊँगा जो निराशा के अँधेरे में छिपी हुई हैं।

मैं घण्टों, महीनों, बल्कि तीन बरसों के अवसाद से मुक्त होकर उस क्षण में एकदम हलका हो गया था। इतना ताजा था कि इस्तीफ़ा देकर, अपनी सारी सीमाओं से मुक्त होकर अपने कर्म संन्यास के सपने को साकार कर सकता था। ईश्वर को लेकर योग और मोक्ष की कल्पनायें भी यदि मैंने कभी पाली होतीं तो वह भी उस क्षण में मैं सहज में प्राप्त कर सकता था। घूमती हुई सर्वलाइट मेरे अंतर्लोक को प्रकोशित कर रही थी।

उसी समय दूर से मोड़ लेकर पहाड़ी पर चढ़ती हुई मोटरकार की लाइट चमकी। मेरा ध्यान दो लोकों के प्रकाश में बँट गया। खयाल आया: 'ये लोग शहर से लौट आये।' खयाल अच्छा नहीं लगा। पत्नी बच्चों के साथ ही मेरा अकसरी, दुनियादारी और अवसाद से घिरा हुआ अहंभाव लौट आया। मैं टायफ़ॉइड के दो रिलैप्सों से जर्जर होकर जलवायु परिवर्तन के लिए इस पहाड़ी इलाके में आया हूँ। मैं बहुत दिनों से उचाट, चिड़चिड़ा और 'समझ में न आने वाला' प्राणी बन गया हूँ। मुझ से सब भयभीत रहते हैं। कोई जी खोल कर बात नहीं करता। आज सब लोग दोपहर का खाना खाकर शहर गये थे, अब लौटकर आ रहे हैं। अपनेपन को लेकर तमाम बातें एक साथ ही होश की सतह पर आ गईं। सर्वलाइट फिर भी चूमती हुई आई; मगर इस बार वह सिर्फ सर्वलाइट थी।

कार पहाड़ी का चक्कर काट कर डाक बंगले के दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। बच्चों की बातें, सुमित्रा की चिड़चिड़ाहट भरी आवाज, कार के दरवाजों का फटाफट बन्द होना, 'चल तो सही अन्दर, देख कैसी खबर लेती हूँ,' तितली का 'आ-भा' कर चीखना—मैं जिन्दगी से घिर गया। मेरी शांति हवा हो गई। दिमाग झुंझलाया। मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

'क्या बात है?' उनके सामने आते हुए मैंने पूछा।

ये तुम्हारे ही सिर चढ़ाने का नतीजा है। ऐसी सन्तान से निपूती होती तो भला था। सुमित्रा की तमतमाहट अपने में समा नहीं पाती थी। दोनों हाथों में पैकेट लादे हुए सुमित्रा तेजी से अन्दर चली गई।

तितली का चेहरा निर्लज्ज-हठ से कसा हुआ था। कोलम्बस और जयन्त सहमे हुए, हाथों में एक-एक दो-दो पैकेट लिए हुए पीछे-पीछे चले आ रहे थे। सब लोग अन्दर चले गए।

खाने के वक्त कोलम्बस, जयन्त चुपचाप थे। मैंने उनको कभी भी इतना खामोश नहीं देखा। सुमित्रा मुझे सूप देकर रसोई घर में चली गई थी। तितली मेज पर न थी। मैं अपनी उत्सुकता को दबाये हुए चुपचाप सूप पीता रहा। सुमित्रा मेरे लिए गर्म-गर्म फुलका लेकर आई। बीमारी के बाद से सुमित्रा मेरे परहेजी भोजन का इंतजाम स्वयं करती हैं। मुझे खाना खिलाकर आप खाती हैं।

कोलम्बस और जयन्त झटपट खा-पी कर चले गये। मैं उत्सुकता के साथ सुमित्रा की प्रतीक्षा करने लगा। सुमित्रा को इतना गम्भीर, इतना कठोर मैंने कभी भी नहीं पाया था। तितली ज़िद्दी है, कभी-कभी बेतुकी जिद भी ठान लेती है, मगर उसकी जिद को लेकर आज से पहले ऐसा नाटकीय सुनसानपन मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। बच्चे भी भीगी बिल्ली की तरह चुपचाप खाना खाकर उठ गए। एक बार इच्छा हुई कि तितली से जाकर पूछूं, फिर सोचा कि पहले सुमित्रा से ही बात कर लेना उचित होगा।

मैं खाना खा चुका। सुमित्रा अभी भी मेज पर नहीं आईं। मैंने उन्हें आवाज दी। सुमित्रा आईं, चुपचाप अपनी प्लेट में खाना परोसने लगीं। उनकी खामोशी जितना ही मेरा कौतूहल बढ़ाती थी, उतनी ही हिचक भी। फिर भी मैंने प्रश्न किया। दो तीन बार पूछा। सुमित्रा खाते-खाते रुक गईं। मुझ से नजरें मिलते ही उनके आंसू एकदम उबल पड़े, बड़ी देर से अंदर छुटसी हुई तमक फूट पड़ी।

सुमित्रा ने जो कुछ बतलाया उससे मैं भी तमतमा उठा। तितली ने आज हमारी इज्जत ही उतार ली। शहर में 'शाविंग' करते हुए तितली ने एक जगह चलने के लिए इसरार किया। सुमित्रा के पूछने पर तितली ने बतलाया कि वह अपने एक दोस्त से मिलने जा रही है। उसका घर वहीं है। छुट्टी में अपने घर आई है। घर के दरवाजे पर उसने जब अपने दोस्त का नाम लिया तब सुमित्रा को मालूम हुआ कि दोस्त एक लड़का है। सुमित्रा चौंकी। वह लड़का सामने छज्जे पर आया। तितली उसे देखते ही घर के अंदर दौड़ गई।

थोड़ी ही देर के बाद घर के अंदर से तितली का चीखना-चिल्लाना, कुछ जनानी-मर्दानी आवाजों का हंगामा सुनकर सुमित्रा स्तब्ध रह गई। उन्होंने ड्राइवार और बच्चों से आवाज देने को कहा। छज्जे पर एक अधेड़ पुरुष ने आकर गुस्से के साथ पूछा—“यह लड़की क्या तुम्हारे साथ आई है? कमीनी, बदजात, शरीफों की इज्जत बिगाड़ने आई है।” और भी जो-जो उसके गुस्से में आया बड़बड़ाते रहे।

आसपास के छज्जों दरवाजों पर लोग-लुगाइयां इकट्ठे हो गये, सड़क पर चलती भीड़ खड़ी हो गई। लोग बाग पूछने लगे “क्या हुआ?”

“हमारे लड़के को भड़काती है। सबके सामने गले लगाती है। छिनाल! रंडी……” सुमित्रा कहने लगीं कि उस आदमी का एक-एक शब्द उनके कलेजे में लूका लगा रहा था। सड़क पर खड़े आसपास के लोग कार में झांक-झांक कर उन्हें देखने लगे। लड़कों के साथ मां भी जनमत में नीचतम बन गई। ड्राइवर ठाकुरदीन घर के अन्दर घुस कर तितली का हाथ पकड़कर खींचता हुआ बाहर निकाल लाया। तितली आपे से बाहर होकर चीख रही थी, ठाकुरदीन का हाथ काट रही थी। ठाकुरदीन ने उसे घसीट कर अपने पास बिठाया और तेजी से गाड़ी हाँक दी। रास्ते पर वह मोटर से कूदने की धमकी

देती रही, चीखती-चिल्लाती रही। बड़ी मुश्किल से ठाकुरदोन तितली और मोटर को सम्हाल कर यहां तक लाया है।

सुमित्रा से तमाम बातें सुनकर मैं थोड़ी देर तक तो पत्थर होकर बैठा रहा। मेरी समस्त क्रियाशीलता जड़ हो गई। फिर न जाने किस अंदरूनी जोश के वशीभूत हो मैं सहसा उठा और तितली के कमरे के दरवाजे पर जाकर किवाड़ धड़धड़ाने लगा। तितली ने किवाड़ न खोले। मैंने उत्तेजना में आकर दरवाजे का शीशा तोड़ डाला, हाथ डाल कर सिटकनी खोली और अन्दर गया, तितली पत्थर-सी पलंग पर बैठी थी।

मैंने उसे बहुत मारा। हिंसा के नशे में मैं उसे कितना मारता चला गया, मुझे होश नहीं। सुमित्रा, ठाकुरदीन, डाक बंगले का चपरासी, रसोइया शंभू महाराज, बच्चे सभी कमरे में आ गये। किसी तरह मुझे खींच कर अलग किया।

उसी दिन रात से मुझे फिर बुखार चढ़ आया। बाद में पता लगा कि तितली को भी बुखार आ गया था। कई दिनों बाद ठण्डे क्षणों में अक्सर उस मार के लिए मुझे पश्चात्ताप होने लगा। मैंने अपने होश में कभी भी किसी को उंगली तक नहीं दिखाई। बच्चों के प्रति, खास तौर पर तितली के प्रति, तो कमजोरी के हद तक मेरा प्यार बसा है। तितली मेरे बच्चों में सबसे बड़ी है। अठारह बरस की हो जाने पर भी मेरी नजरों में अब तक निरी बच्ची ही रही है। नाम सौदामिनी है, पर मैं उसे शुरू से ही तितली पुकारता हूं। इसी नाम से वह आम-तौर पर प्रसिद्ध भी है। मेरे तीनों बच्चे देखने में सुन्दर हैं, तितली उनमें भी सबसे अच्छी है। हूबहू अपनी मां को पड़ी है। फर्क इतना है कि वह ज्यादा नाजुक, दुबली पतली है और चंचल भी। अक्सर बीमार रहती है। बेहद जिद्दी है; सिर्फ अपना ही अपना देखती है।

रोग शैया पर पड़े हुए मैं इस घटना को लेकर गहरा विचार किया करता था। मैं यह साफ-साफ देखने लगा था कि दोष मेरा है। बच्चे की बढ़ती हुई उम्र का खयाल न कर उसे बच्चा समझते रहना ही सबसे बड़ी भूल है। बच्चों को खिलौना समझ कर उनके साथ खेलने का भाव—यह स्वार्थ भरी भावना—बच्चों के मानसिक धरातल को समतल नहीं बनने देती। बच्चे उम्र में छोटे होने से तो रहे मगर मा-बाप के लाड़ से मजबूर होकर वे छोटे बनने का नाटक अवश्य करने लगते हैं। अस्तित्व और बहाना उनके जीवन में अनदृश पहेली बन कर विचित्र विरोधाभास उत्पन्न कर देते हैं। तितली के साथ भी यही हुआ।

इस अनुचित लाड़ का एक कारण यह भी था कि तितली बरसों तक हमारी एकमात्र संतति रही। तितली और कोलम्बस में आठ वर्ष का अंतर है। बीच में दो बच्चे गए। सुमित्रा काफी बीमार रहीं। कोलम्बस के होने पर हमें नया खिलौना मिला। तितली उदास रहने लगी। हमने उसके बड़प्पन का, जीर्जापन का, एहसास करा कर उसे शांत तो किया, पर अपने छोटे भाई को वह अपना न सकी। कोलम्बस के प्रति अन्यायपूर्ण द्वेष करने पर सुमित्रा यदि कभी डाटतीं तो मैं तितली का पक्ष लेकर उनसे नाराज होता था। छोटे से बच्चे पर उपेक्षा की मूक प्रतिक्रिया होती रही। कोलम्बस जब तीन बरस का था तब एक दिन घर से लम्बा निकल गया। चारों तरफ दौड़ भाग हुई। बस्ती से दो मील दूर एक गांव में पाया गया। लौटकर आने पर वह बड़े उत्साह से 'नई-नई जगह' का वर्णन करने लगा। दुष्यन्त का नाम तभी से कोलम्बस पड़ गया। इसके बाद एक बार और भी कोलम्बस भाग गया था। यह तो जब से जयन्त हुआ है, कोलम्बस का भागना छूटा है। कोलम्बस को छोटा भाई क्या मिला, नई दुनिया मिल गई। हमने एक बात यह भी नोट की कि कोलम्बस का स्वास्थ्य अच्छा हो गया। तितली में भी एक परिवर्तन आया। वह अपने छोटे

भाइयों के प्रति रूखी न रही, फिर भी अपनापन कभी न दे सकी। तितली के हठ और कोलम्बस से बार-बार भाग जाने का सुमित्रा पर भी कठोर प्रभाव पड़ा। वह घर के कानून-कायदों का कठोरता से पालन करने लगीं। बच्चों पर उनका अनुशासन प्रेमपूर्ण होते हुए भी कठोर हो गया।

तितली अक्सर उनके नियमों की अवहेलना करने का प्रयत्न करती। सुमित्रा को यह बर्दाश्त न होता था। वे बड़ी स्वाभिमाननी हैं। हर काम पर उनकी नजर रहती है। जैसे वह खुद अपना काम लगन और जिम्मेदारी के साथ करती हैं, वैसे ही हर एक से आशा भी करती हैं। और केवल आशा ही नहीं अपनों को वह उसी तरह काम करने पर मजबूर भी करती है। माँ-बेटी में कभी नहीं बनती थी। सुमित्रा के अदब-कायदों में दखल देने का साहस तो मैं भी नहीं करता, उनके रुठने से मुझे डर लगता है। फिर भी मेरी ममता की ढील पाकर तितली पूरी तौर पर कभी भी उनके अनुशासन में नहीं बंध सकी। सुमित्रा अक्सर कहा करतीं : 'यह तुम अच्छा नहीं करते। लड़की है, पराये घर का धन, ढंग के चार लच्छन न आये तो अपने को और अगलों को रोयेगी जनम भर।'

तितली को लेकर सुमित्रा की गम्भीर वेदना कभी भी मुझे स्पर्श न कर सकी। मैं सदा दो तरह से सोचता रहा : एक तो यह कि तितली अभी बच्ची है, उम्र पाकर जिम्मेदार बन जायगी, दूसरे यह कि काफी दकियानूस होने के कारण सुमित्रा आनेवाले जमाने की ससुराल या पति-पत्नी के आजाद जीवन की कल्पना नहीं कर पाती। अगले जमाने के जीवन को लेकर खुद मैंने भी कभी साफ-साफ नहीं सोचा था, केवल चलते जमाने की आजादी की लहर में वहा करता था। तरक्की पसन्दी जब अपने उद्देश्य की गहन विवेचना से हटकर फैशन बन जाती है तब व्यक्ति और समाज की सहूलियत की चीज हो जाती है। लेकिन उस

दिन की घटना के बाद से मेरी तमाम आस्थायें डिग गईं। मैं बौरा गया। तितली का यह प्रेमकांड कब से चला, उस दिन उस घर में हंगामा मचानेवाली ऐसी कौन सी घटना घटी, यह सब जानने के लिये मेरे पास कोई उपाय न था। इतना जरूर मालूम हुआ कि तितली दो दिनों से शहर जाने के लिये बहुत मचल रही थी। उन्हें भी कुछ सामान खरीदना था, सो लड़की का मन भी रख लिया। हंलाकि तितली को सबके साथ जाना अच्छा नहीं लगा। उन सब बातों को जानने के लिए मेरे मन में उत्सुकता भी न थी। सच-सच कह दूँ, तितली से अधिक मैं अपनी इज्जत को लेकर परेशान हो गया था। और जो बात मुझे सबसे अधिक चुभी वह थी तितली के संसर्ग में मेरी सुमित्रा का भरे बाजार में कलंकित होना। शायद इसी कारण से निर्मम होकर मैंने लड़की को मारा भी।

अच्छा होने के बाद भी, अपने काम पर लौट आने के बाद भी मैं अच्छा न हो सका। मेरा अवसाद पहले से कहीं अधिक बढ़ गया। तितली का स्कूल छुड़ा दिया गया। घर पर ही कॉन्वेन्ट की एक अध्यापिका नियुक्त कर दी गई। बच्चों के प्रति लाड़ दिखाना तो दूर, मैंने अपने प्रति कठोरता बरत कर उनकी ओर विशेष ध्यान देना तक छोड़ दिया। मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं रह गया था, चाहता था माँ की निगरानी में बच्चों का भविष्य बने।

मैं अपने को अत्यधिक हीन समझने लगा था। दो बार मैंने खुद अपने आप से गहरा धोखा खाया था। सन् '४२ में देश के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत होकर, और सन् '४५ में पिता के नाते अपनी अविचार-शीलता को पहचान कर मैं स्वयं अपनी कमजोरियों से उलझ रहा था, अपनी बुराइयों के मूल को खोज रहा था। लेकिन अपने आप को सामाजिक-संदर्भ में रखकर संतुलित दृष्टि से परखने के लिए मुझे अभी और गहरे अनुभव की आवश्यकता थी। अभी तो मुझे और भी अधिक भोगना था।

अँधेरे आस्मान का एक कोना आग की लाल लपटों से सुलग रहा था। मैं अपनी छत पर खड़ा हुआ दूर लगी लपटों में खो गया था। चीख, गुहार, नारों और गोलियों की आवाज़ों का हवा पर दबाव था। मेरी साँसें घुट रही थीं, मैं पत्थर की तरह खड़ा था।

अचानक बहुत नज़दीक से ही शोर फूट पड़ा। मेरे पत्थर से जिस्म में बड़ी फुर्ती से जान आई। तभी सुमित्रा घबराती, बेहोश, बेपनाह-सी सीढ़ियों पर चढ़ती हुई दिखाई दीं।

“सुनते हो !....रामदीन के कटरे पर चढ़ाई हो गई।” सुमित्रा की आवाज़ डर से लड़खड़ा रही थी।

मैं भी भयमुक्त नहीं था। किन्तु स्थिर था। सुमित्रा को धीरज बँधाते हुए बोला, “तो घबराती क्यों हो।”

मेरी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि दूसरा हल्ला उठा। मारो, मारो, या अली, जय हिन्द, आह, कराह, मर्मन्तक चीखें, लाठियों की खटाखट—सब ध्वनियाँ मिलकर सीधे दिल पर ही आकर बार करने लगीं। सारा शरीर सुन्न हो गया था—इतना सुन्न कि अपने दिल की धड़कने साफ़ सुनाई पड़ती थीं। उनमें भय और करुणा की बड़ी विचित्र गूँज उठ रही थी।

मेरे मुहल्ले से भी सावधानी के नारे पूरी सजगता, पूरी शक्ति और भयजनित कठोरता से कर्कश होकर फूट पड़े। छतों-छतों से, गली-गली से ललकारें चढ़ने लगीं। मेरी चेतना स्थिर हुई। मैंने सुमित्रा को देखा; सीढ़ी पर एक हाथ टेके वह झुकी हुई खड़ी थीं, उनका मुख मेरी ओर टकटकी बाँधकर लगा हुआ, गहरा खोया हुआ था। मैं उनकी ओर बढ़ा, वह आपे में आई। मैंने कहा, “मैं जाता हूँ।”

“कहाँ ?” उनके स्वर में आत्मीयता साकार प्रकट हुई, उसका

स्पर्श इतना तीव्र और मार्मिक था कि उससे कायरता और बल दोनों ही प्राप्त हो सकते थे। मुझे बल मिला। आत्मीय स्वजनों की रक्षा के लिए बर्बरता से लड़ना ही एकमात्र गति है। बीसवीं सदी की सभ्यता के सलोने स्वरूप को कोढ़-सी कुरूप बनाने वाली पशुता को परास्त करना ही होगा। स्वयं सतेज होकर मैंने सुमित्रा को सान्त्वना दी। उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला: “क्या अकेला मैं ही हूँ? सारा मुहल्ला जमा है बाहर।”

सुमित्रा जानती थीं मैं न रुकूंगा। कुछ न बोलीं। हम दोनों ज़ीने उतरने लगे। नीचे कमरे में मेरा चार महीने का बच्चा सुमन्त सो रहा था। कोलम्बस, जयन्त और तितली छज्जे में खड़े बातें कर रहे थे। जयन्त फ्रील्ड मार्शल की गम्भीरता के साथ कह रहा था, “जीजी, मैं और भाई साहब तो मिर्चों की पिचकारी चलायेंगे और तुम गुम्मे मारना। अरे देखना तो सही धुरें उड़ा देंगे हम लोग जनाब”

जी चाहा कि एक बार अपने बच्चों को कलेजे से लगा लूं। मगर मैंने संयम से काम लिया। दालान से धुर नीचे के जीने की तरफ बढ़ते हुए मैंने सुमित्रा से कहा: “पान लगे रखे हों तो दो ठो उठा दो जल्दी से।” बाहर जाने से पहले मैं, जितनी देर हो सके, घर में रहना चाहता था।

सुमित्रा कमरे में पान लाने के लिये चली गईं, तख्त पर रक्खी हुई राइफल उठाते हुए एक क्षण के लिए विचार आया, लौट कर न आ सकूँ तो? मन भारी हुआ। इस घर और मुहल्ले के बचपन से लेकर विभिन्न नगरों के बंगलों और सिविल लाइनों तक सांसारिक उन्नतियों से हरे भरे जीवन की, सुमित्रा और बच्चों से समृद्ध अपने पारिवारिक स्वर्ग की सुखद स्मृतियाँ तेजी से मेरे मन में मिमट आईं। कोलम्बस का यज्ञोपवीत करने के लिए दस वर्ष बाद अपने नगर में

अपने खान्दानी घर में हम लोग आये थे । अब सब कुछ मिट रहा है । जीवन भय से घिरा हुआ अस्थिर है । अस्थिरता की भावना से मोह जागा, साथ ही आत्मविश्वास भी । इस आत्मविश्वास के दो रूप थे : एक तो यह कि इस मुहल्ले तक हमला होने की नोबत ही न आयेगी । दूसरे यह कि मुझ में मौत से लड़ने की शक्ति है ।

राइफल मेरी मुट्ठी की गिरफ्त में कस गई । सुमित्रा पान लेकर आ गईं । उनके चिन्ता से कठोर चेहरे पर बहाव लाने की गरज से पान लेते हुए बोला, “तुमसे विजय बीड़ा लेकर जा रहा हूँ । अब कौन आ सकता है भला ।”

मेरे हँसाने के प्रयत्न को मान देने के लिए उनके होठों पर एक सीधी लकीर खिंची और मिट गई । मैं ज़ीने उतरने लगा । पहले छत में मेरे पिता के समय से पूजा करने वाले बूढ़े पण्डित जी, उनकी पत्नी और विधवा पुत्री रहती हैं । उन्हीं की निगरानी में इतने वर्षों से यह महान खाली होने पर भी सुरक्षित है । तीनों अन्दर कोठे में थे । लालटेन की रोशनी और पण्डित जी के खाँसने की आवाज़ आ रही थी । सुमित्रा मेरे साथ धुर नीचे आई । बाहर जाने के लिए मैं दरवाजे की कुण्डी खोलने लगा । सुमित्रा टूट कर मेरी छाती से लग गईं, अपनी दोनों बाँहों से मुझे कसकर जकड़ लिया । उनके इस भयकातर प्रगाढ़ आलिंगन से बँधने पर मैंने बड़ी आश्चर्यजनक रीति से अनुभव किया कि मेरे मन में किसी प्रकार के भय की भावना शेष नहीं थी । मैं मरने-मारने पर तुल चुका था । शायद इसीलिए सुमित्रा की इस टूटी हुई मनोदशा के प्रति मेरे मन में उपेक्षा का भाव उत्पन्न हुआ ।

“छि: छि: ! यह क्या पागलपन है सुमित्रा ।” उनकी बांह को अपने कंधे से हटाते हुए मैंने कहा : “मुझे कोई खतरा महसूस नहीं होता । अपने को सावधान करो ।”

सुमित्रा ने अपने को सम्हाल लिया, इस हद तक कि वह मुझसे हटकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाय । मैंने दरवाजा खोला । गली से

आते हुए प्रकाश में मैंने उनका मुँह की तरह पीला चेहरा देखा ; चुभा । मैं बाहर चला आया । उस समय मुझमें दया का लेशमात्र भी न था, राइफल मेरी सख्त मुट्ठी की गिरफ्त में थी ।

रामदीन के कटरे का शोर अभी भी तेजी पर था । मेरे मुहल्ले के लोग भी बड़ी मुस्तैदी के साथ अपनी ड्यूटी पर तैनात थे । सभी लोग थे : विद्यार्थी, दफ्तरी बाबू, दूकानदार, पानवाला, मिठाई वाला, वकील साहब, डॉक्टर साहब, प्रोफेसर साहब, मास्टर साहब, लीडर साहब, तीनों रईस भी थे—पीछे कुर्सियां लगा कर बैठे थे । उनके नौकर थे, किराये के गुंडे थे । गुंडों के लिए दारू का इन्तजाम था, पान बीड़ी सिगरेट का सदावर्त खुला हुआ था । बड़ी दरियादिली, बड़ी नफरत, बड़ा जोश था ।

लाठियाँ तनी हुई थीं, बरछे, गँझासे सम्हले हुए थे, बड़े-बड़े पित्तकारों में मिर्चों का पानी खींच लिया गया था । कुछ लोगों के हाथ में तेजाब की बोतलें थीं, और कुछ लोग पेट्रोल से भरी बोतलें लिए खड़े थे । तेल से डूबी मशालों में दियासलाई लगाई जा रही थी ।

रामदीन के कटरे का शोर और बढ़ गया था इससे लोग अनुमान लगाने लगे थे कि दुश्मनों की शक्ति ज्यादा है, और उस मुहल्ले के लोग हार रहे हैं । हमारे यहां नारों का शोर था, मगर दिलों में मौत का सन्नाटा छाया हुआ था । हर शख्स आने वाले खूनी क्षण की प्रतीक्षा में अपने को कस रहा था रामदीन के कटरे और हमारे मुहल्ले के बीच में सिर्फ एक ही मुहल्ले का फासला है । घरों की खिड़कियों और दरवाजों से सहमी हुई औरतें और बच्चे झाँक रहे थे ।

मैं गली के एक छोर से घूमकर दूसरी तरफ बढ़ने लगा, जहाँ रईस लोग कुर्सियां डाले बैठे हुए थे । मुझे देखते ही सेठ सूरजमल बोले : 'लो भाई, मैजिस्ट्रेट साहब भी आ गए । अब चार बंदूकें हो गईं अपने पास । आप तो उधर से देखके आ रहे हैं—सब कोई हुशियार हैं न !'

मैंने कहा : 'जान का खतरा सबको होगियार बना देता है । यह भी कोई पूछने की बात है ?'

ऐसे आतंक भरे अवसर पर इन्तजामकार का सेहरा बाँधकर बैठने वाला यह मसनदी-रुख मुझे निहायत भद्दा मालूम हुआ । मेरे जवाब में फटकार थी, जिसका उन पर तात्कालिक असर हुआ । कुर्सी पर पैतरा बदलते हुए हड़बड़ा कर वे बोले : 'नहीं नहीं, आप मरा मतलब नहीं समझे—'

उनकी बात के प्रति उपेक्षा का भाव धारण कर मैं आगे बढ़ा । सेठ सूरजमल फौरन ही उठ खड़े हुए । उनके उठने के साथ ही दो कुर्सियाँ और खाली हो गईं, केवल लाला चंदरभान बैठे रहे । मेरे साथ-साथ चलते हुए सेठ सूरजमल ने अपनी बात जारी रखी : 'आप जानते नहीं हैं—बरसों से बाहर रहते हैं न—इस मुहल्ले के लोग साले बड़े पाजी हो गए हैं । अरे कई लोग तो खुलेआम कह चुके हैं कि लूटेंगे तो हमारा क्या, दो चार बर्तन जायेंगे, इन बड़े लोगों के लिए काहे अपनी जान दें । हम भी लूटेंगे इन्हें ।—ऐसे निमकहराम हो गए हैं साले ये छोटे लोग ।'

मैंने कोई उत्तर न दिया । मेरे कान रामदीन के कटरे से उठती हुई चीखों से भर रहे थे । शंकरी टोले से भयजनित उत्साह का हुल्लाह वेग से बढ़ रहा था : 'आ गए । आ गए । सम्हालो । जयहिन्द । जयबजरंग ।'

हमारे मुहल्ले में भी नारों का वेग बढ़ा । गली के मुहाने को रोके हुए किराए के गुण्डे खड़े थे । उनके पीछे नौकर-चाकर और छोटे लोग, फिर नौजवान विद्यार्थी, बाबू, दुकानदार आदि लाठी-बरछे ताने खड़े थे । ताजे हुल्ले के उठते ही सबके चेहरों पर अजीब तनाव और जोश भरी बेहोशी छा गई । कतों के पहरेदार ने अवाज लगाई : 'कटरे में आग लगी आग । आग.....'

नयी सनसनी फैली। सेठ 'सूरजमल' ने गुन्डों को पीछे से ही लल-
कारा: "डटे रहना जवानों। दुश्मन घुसने न पाये। सौ-सौ रुपये दूँगा
एक-एक को।"

कल्लू सरदार सीना तानकर अपनी बारीक आवाज गुँजाते हुए बोला
"देखते जाइये सरकार! पँरे के पँरे सँफा कँड्डालेंगे साँलों कें। धरतीं
से दुस्मनों का नाम मिटा देंगे। जयहिन्द! "जयहिन्द!! जयहिन्द!!"

जयहिन्द का नारा गली के ओर छोर तक सामूहिक शक्ति के
साथ गुँज उठा: छतों से, खिड़कियों, दरवाजों से, पतली-सँकरी गलियों
से, मुहल्ले के कण-कण से उन्मादी स्वर लेकर गुँज उठने वाला यह
नारा धौंसे और मारू बाजों के असर-सा हर दिल में गमगमा उठा।
कोई आपे में नहीं था। वहाँ कोई व्यक्ति नहीं रह गया था—हर व्यक्ति
लाठी था, तलवार था, गँड़ासा था, बछ्छा, कृपाण, पेट्रोल और तेजाब
की बोतल था। मैं भी उस वक्त सिर्फ राइफल था, मेरी हर सांस में
हमलावरों की छातियों को भूनने के लिए गोलियाँ भरी हुई थीं।
दुश्मनों को जलाने के लिए जलती हुई मशालें हमारी हिंसात्मक
प्रवृत्ति का प्रतीक बनकर लपलपा रही थीं। सभ्यता और शांति का
घर—इंसान का मुहल्ला—युद्धक्षेत्र बन रहा था।

[४]

पर हमारे मुहल्ले पर हमला होने की नौबत नहीं आई। थोड़ी
ही देर में पुलिस और फायर ब्रिगेड ने पहुँचकर रामदीन के कटरे और
शङ्करी टोले में स्थिति पर कानूनी पा लिया। लोगों के हथियार छीने जाने
लगे। गुण्डों और शरान्तियों की गिरफ्तारियाँ होने लगी। हमारे मुहल्ले
में यह खबर आते ही सेठ सूरजमल को छुरियाँ, कटारियाँ, तलवारे
पेट्रोल और तेजाब की बोतलें बचाने की पड़ी। गुण्डों के सरनाम
सरगना पुलिस से अपने चेहरों को छिपाने के लिए सेठ सूरजमल से
से पनाह माँगने लगे। सेठ सूरजमल के गम्भीर चेहरे पर भी परेशानी
की हिलती रेखाएँ महसूस हुईं।

उड़ती चिड़िया को भाँपने वाला गुण्डों का सरदार कल्लू बोला, 'हम पुलिस जेहल से भाँ नई खाते संरकार। हमारा रोज का कांम हैगा। बांकी इती बेंलाई अनानाहं कौद में नहीं पड़ना चाहत। हम लोग आपके काम से आये हेंगे। छिपाना तो पड़ेगा ही आपको हम।' कल्लू ने धमकी-सी दी।

सेठ सूरजमल इतनी देर में संभल गये थे। चटपट बोले, "यही तो मैं भी कहता हूँ। मेरी कोठी तक पहुंचते पहुंचते कहीं पुलिस आ गई तो बेकार में पकड़े जाओगे। लो जल्दी करो, सामने लाला चंदरभान के यहां"—

लाला चंदरभान भड़क कर बोले : "ये गुण्डागर्दी तुम्हारे यहां ही पलती है। मैं —"

मैं गुण्डों का पोषक नहीं। पर इस समय मुझे यह स्पष्ट अन्याय लग रहा था कि उन्हें आश्रय न दिया जाय। मैं खूब समझ रहा था कि इन पर विश्वास न करने के कारण ही ये धनी लोग उन्हें अपनी हवेलियों में नहीं छिपाना चाहते थे। मैंने तुरन्त खिड़की पर खड़े अपने बच्चों को पुकार कर दरवाजा खोलने को कहा। पचासों गुण्डे तेजी से अन्दर चले गये। इतने में ही पुलिस आ गई। गुण्डों के छिपाने का प्रश्न उठ खड़ा होने पर मुहल्ले वालों से हथियार और पेट्रोल तेजाब की बोतलें नहीं बटोरी जा सकी थीं। पुलिस सब ले गई। तीनों सेठों की बन्दूकें भी अस्थाई तौर पर पुलिस ले गयी। मेरा परिचय पान के बाद मेरी राइफल ले जाने का सवाल ही नहीं उठता था। पुलिस वालों ने सबको अपने-अपने घर जाने का आदेश दिया। सुबह पांच बजे से अड़तालीस घंटे का कर्फ्यू लग जायेगा, इसकी सूचना भी दे दी गयी। जिम्मेदार लोगों को बाहर आने जाने के लिए परमिट भी दिये जायेंगे। सेठ सूरजमल यह सुनकर आश्चस्त हुए।

लोग चलने लगे। सेठ सूरजमल ने चलते हुए मुझसे कहा : "मजिस्ट्रेट साहब, आपने हमारी इज्जत रख ली। इन गुण्डों से ना भी

नहीं कहते बनता था, अरे हाँ साहब, मुफ्त की अदावत हो जाती। और हवेली में रखते भी — आप तो जानते ही हैं, इन सालों का क्या भरोसा ? मगर आपका ये कुछ नहीं बिगाड़ सकते। आप तो हैं हैं — ”

मैंने कहा : “खैर यह सब तो ठीक है ; अब तो ये लोग अड़तालीस घंटे तक मेरे मेहमान रहेंगे। मेरे साथ, सिर्फ एक ही नौकर आया है जो रसोई वगैरह बनाने में ही फंसा रहेगा। इनकी खातिर तवाजह करने के लिये मेरे साथ आप लोगों में से कोई एक — ”

एक बुद्धिआलोकित सुन्दर मुख का नौजवान, जिसकी उम्र छब्बीस-सत्ताइस के लगभग होगी, मेरी बात पूरी होने के पहले ही बोल उठा :

‘आप मेरी सेवार्थ स्वीकार करें। राजे, मेरे घर में कह देना मैं शंकरशरण जी के यहां हूँ, चिन्ता न करें।’

पचास मेहमानों से भरे हुए आंगन में जब मैंने कदम रक्खा तो ऐसा लगा कि किसी नई जगह से आ गया हूँ। वातावरणकी भयानकता और रहस्यमयता ने मुझे बंकिमबाबू की ‘देवी चौधरानी’ की डाकुओं वाली गढ़ी की याद से भर दिया। पुराना मकान—दहलीज़, आंगन तीन तरफ के दालान कोठरियाँ-कोठे—सीलन और अंधरे से भरे हुए, सामने वाली दालान के खम्भे में कोल पर टंगी हुई लालटेन इतनी बड़ी जगह और इतने विचित्र मेहमानों को पूरी तौर पर आलोकित करने की अपनी असमर्थता को पहचान कर जैसे खुद अपने आप में ही छोटापन महसूस कर रही हो; लालटेन के सामने दूसरे खम्भे के पास ही इकट्ठा रखी हुई तलवारें, गँडास, खुखड़ियाँ, कटारें और बल्लम पूरी रोशनी में चमक रहे थे। आंगन और दालानों में जगह-जगह टुकड़ियों में बंट कर बैठे और बातचीत करते हुए आदमियों के अस्पष्ट चेहरे दहशत पैदा करते थे।

आंगन में अपने नये साथी के साथ प्रवेश कर पहली झलक में दृश्य की नवीनता और विचित्रता का पूरी तौर पर अनुभव भी न कर पाया

था कि मेरे पचासों मेहमान अदब से उठ खड़े हुए। चारों ओर से सलामें झुकने लगीं। कल्लू सरदार बोले: 'हंजूर, जिन्दगीं भंर आपका ऐंसान नहीं भूलेंगे हंम....'

मैं अपने अफसरी अभ्यास की गम्भीरता को सुरक्षित न रख सका। लम्बे, चौड़े, पुष्ट देहधारी सरदार की आवाज बड़ी बारीक थी, करीब-करीब जनानी सी थी और उस पर नाक से बोलता था। शायद अपनी इस कमजोरी को महसूस करने के कारण ही वह सदा बड़ी जोर से बोलने की कोशिश करता था। गली में भी दो तीन बार मैंने कल्लू सरदार की आवाज सुनी थी जिसकी विदूषकता पर उस समय के वातावरण के कारण मेरी हँसी खिल न सकी थी, अब उस पर संयम न रख सका। परन्तु हँसी छूटने के साथ ही ज़्यादा हुआ कि कहीं इसका जी न दुखे; मैंने चट से बात बढाई: 'इसमें एहसान मानने की बात ही क्या है? और अब तो लोगों को दो रोज तक मेरा मेहमान बनना पड़ेगा।'

दालान से एक दुबला-पतला छरहरे बदन का जवान बाहर आता हुआ बोला: 'क्या करफू लग गया हजूर।'

मैंने कहा: 'हां! अच्छा तो अब आप लोग आराम कीजिये। मुझे अफसोस है कि मेरे पास यहां इतना सामान तो नहीं कि सबको बिछायन—'

कई आवाजे एक साथ ही 'नहीं-नहीं सरकार' बोल उठीं। कल्लू सरदार बड़े गद्गद होकर बोले: 'हंजूर आपके मीठे बोल ने हंम गुलाम बना लिया। हंम ओछे आंदमी, जान जोंखों की जिंदगीं बिताने वाले संरकार—पड़ रहों नें पंड रहों—जहां जिसे नींद आवें। वंडे लोगों को भी देख लिया संरकार जो हंम कंटाने के लिए हंमाई खांतरदारी करते हैंगे। और आप हंजूर जैसे संरीफों को भी देख लिया—हंम भी संरीफ हैंगे संरकार, पेंट के लिए चांए जो बी करते होंवें।'

मने कहा, 'शराफत का ठेका सिर्फ बड़े लोगों ने ही नहीं लिखाया भाई मेरे ।'

कल्लू सरदार उत्साहित होकर बोले: 'जुग जुग जिये हंजूर, बड़ी पढ़ी-लिखी बात कहें हैंगी आपने ! हमको अपनी कोठी में संरत दें दें तो गंगा कंसम ऐसे नई की हम लोग जो इती बेंला उनके साथ किसू तरै की धोका—धंडी करते । हम तो खाली अपने को पुलिस जेहल से बचाना चाहते थे । दंगे में पकड़ लें तो छैं मईने तक सुनवाई नहीं । हमारे बी बाल बच्चे हेंगे गंदीबपंवर । मंगर नई, उधे सौंची कि काम तो निकलीं गया, जाने दो सालों को, पैसे बचेगे ! अरे मैं पचांस की जगै फी आदमी दो-दो सौ वंसूल न करूं पंरसों तो मेरा नाम कल्लू सरदार नहीं ।'

कल्लू सरदार की बारीक आवाज में उनके पेशे की कठोरता भरी हुई थी ।

मैने कहा: 'अच्छा तो अब आप लोग आराम कीजिये । पानी चानी पीना हो तो भिजवाऊं ?'

'नई-नई संस्कार । संब ठीक हैं ।' कल्लू बोले ।

मैं अपने साथी के साथ ऊपर चढ़ने लगा । कल्लू सरदार आगे बढ़ कर बोले: 'गंदीब पंरवर, मैं संब हंरबें हथियार ऊपर पहुंचादूं कहियें तो ?'

मैं सरदार का आशय समझ गया । बात ने मन को स्पर्श भी किया । मैंने छूटते ही उत्तर दिया: 'अपनी बन्दूक भी आप ही के पास रखता जाऊं कहिये तो ?'

कल्लू सरदार गद्गद हो गये: 'हंजूर नें हमारा मुंहीं बंद कर दिया । बंहोंत बंडा दिल पाया है संस्कार ।'

मैं अपना दिल टटोलने लगा । वाकई मैं इन गुण्डों पर विश्वास करता हूं ? भावना के एक उफान में अन्याय की स्वस्थ

प्रतिक्रिया-वश मैंने इन्हें घर में शरण देकर अपने साहस का परिचय तो दे दिया, पर क्या फिर दूसरे खयाल में मेरा मन सहमा नहीं था ? मैंने खातिरदारी के बहाने मदद के लिए एक आदमी क्यों मांगा ? और क्या सिर्फ एक आदमी और साथ में आ जाने से मैं विद्रोही हो जाने पर इन सबका मुकाबला कर सकूंगा ? दरअसल मैंने अपने डर को बहलाया था । दरअसल मुझे आदमी पर विश्वास नहीं । दरअसल मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं ।

ये गुन्डे कहलाने वाले आदमी मुझे नया विश्वास दे रहे थे । मेरी एक पुकार पर निस्संकोच भाव से चला आने वाला मेरा साथी नवयुवक मुझे नया विश्वास दे रहा था ।

सुमित्रा और बच्चों से नौजवान का परिचय कराते हुए खुद मुझे भी उसका परिचय मिला । मोहनकृष्ण शर्मा इसी मुहल्ले के मेरे घनिष्ट परिचित स्व० रामकृष्ण पुरोहित का लड़का है । पुरोहित जी मेरे समवयस्क थे । बचपन में गलियों में हम साथ साथ खेले हैं, उस समय अच्छा सौहार्द रहा है । फिर हमारी जीवनधारायें दो अलग-अलग दिशाओं में मुड़ गईं । पुरोहित जी, ऐसा याद पड़ता है, तीसरे या चौथे दर्जे तक मेरे साथ स्कूल में पढ़े थे । बड़े मस्त थे । दोवक्ता भङ्ग छानते थे और शिवाले में बैठ कर बड़े प्रेम से ऊँचे स्वर में 'क्षन्तव्यो-मेपराधः शिवशिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो' का पारायण किया करते थे । इस समय मोहनकृष्ण के सम्पर्क में आकर मेरे बचपन और नव-युवाकाल की स्मृतियाँ सजीव हो उठीं, और वह सिमटी हुई मधुर भावना तत्काल ही मोहन के प्रति निछावर भी हो गई । ऐसा क्यों होता है कि एक क्षण में ही कोई अनजान हमें अपना निकटतम लगने लगता है—यह मैं आज तक नहीं समझ पाया । पुराने लोग पिछले जन्म के संस्कारों से इस अपनेपन को मिला देते हैं । जो हो, मोहन के प्रति मेरी ममता सहज रूप से आकृष्ट हुई । वह मुझे विनयी, मिष्टभाषी

किन्तु स्पष्टभाषी भी लगा। उसने इतिहास में एम.ए. किया है, समाज शास्त्र उसका प्रिय विषय है, मोहनजोदारो और ताम्रयुगीन सभ्यता को उसने अपनी खोज का विषय बनाया है, और इस समय एक स्थानीय दैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम भी करता है। मोहन के दो छोटे भाई हैं, छोटा इन्टर में पढ़ता है, मंझले ने पुरोहिताई सम्हाली है, दो बहने हैं, एक विवाह के योग्य हो गई है, उसकी चिन्ता है। मा हैं, बूढ़ी दादी भी हैं। मंझले भाई का विवाह भी हो गया है, मोहन ने अपना विवाह नहीं किया और निकट भविष्य में विचार भी नहीं है। विवाह करेगा—विवाह संस्था में विश्वास करता है—परन्तु अपने छोटे भाई बहनों की जिम्मेदारी से मुक्त हो जाने के बाद, जीवन में समुचित आर्थिक-व्यवस्था का लाभ कर लेने पर। उसकी महत्वाकांक्षा पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं लगती। यह तो स्वावलंबन का साधन-मात्र है। वह डॉक्टरेट हासिल कर किसी विश्वविद्यालय में अध्यापक हो जाने की इच्छा रखता है, इतिहास का लेखक बनना चाहता है।

थोड़ी ही देर में मोहन के संबंध में मुझे समुचित जानकारी प्राप्त हो गई। मैंने कहा : तुम्हें बेकार में ही तकलीफ़ दी। मैंने समझा था कि इतने लोगों को सम्हालने में शायद अकेले मुझे असुविधा हो।'

'इस बहाने आप जैसे प्रसिद्ध लेखक के सम्पर्क में आ सका; मुझे तो इसी बात की खुशी है।'

मोहन ने अफसरी के बजाय मेरे लेखक को गोरव दिया यह अच्छा लगा, साथ ही मन का दर्द भी जागा। एक दबी निश्वास छोड़ते हुए मैंने कहा: 'अरे लिखने से तो मेरा नाता ही छूट गया बरसों से—तुम आराम करना चाहो तो बिस्तर तैयार है।'

'अब साढ़े तीन बज रहे हैं। सोने का वक़्त निकल गया। अलावा इसके रात भर की भयंकरता ने आराम पाने की भावना ही नष्ट कर दी है।'

‘मेरी भी यही हालत है। कटरे की दर्दनाक आवाजें अभी तक जसे मेरे रोम रोम से उठ रहीं हैं—उन चीखों में लगता है जैसे सारा देश सताया हुआ है, हर घर कराह रहा है।

मोहन बोला: ‘ताज्जुब सा लगता है कि देश आजाद हिन्द फौज के मुकद्दमे में, नाविक विद्रोह में, आर्थिक हड़तालों के अभूतपूर्व जोश में अपनी राजनैतिक और आर्थिक आजादी पढ़ने के लिए सही कदम उठा रहा था, वही एकाएक जिहाद और धर्मयुद्ध के बाने को पहनकर सदियों पीछे चला गया। यह सचमुच हमारा दुर्भाग्य है।’

समस्या पर बौद्धिक दृष्टि से गौर करते हुए मैंने उत्तर दिया ‘मुझे ऐसा लगता है कि आज़ादी पाने के लिए हमें अपने खून से उसकी कीमत चुकानी ही थी—’

‘ठीक है, मगर किस तरह? यों साम्प्रदायिक रूप में?’ मोहन बात काटकर बोला।

मैं उलझा, कहने लगा: ‘इसके अलावा हमारी आज़ादी की राह में और दूसरी समस्या ही कोन सी आती है? हम मानवतावादी दृष्टिकोण से भले ही इस समस्या को महत्व न दें, मगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हुए हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सदियों से चला आता हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य आज़ादी आने के इस मौके पर अपना सही-सही हल चाहता ही है। दो विभिन्न संस्कृतियों को लेकर इस देश में राजनैतिक एकता कभी स्थापित ही ही नहीं सकती।’

‘तो आप भी जिन्ना, या अब महासभा के नेताओं की तरह भी, दो संस्कृतियों वाली थ्योरी पर विश्वास करते हैं?’

जिन्ना या महासभा के नेताओं से अपना मतैक्य स्थापित करने में मुझे कुछ झेंप सी लगी, मैंने बात को संवारते हुए कहा: ‘जिन्ना या महासभा वाले तो राजनैतिक दृष्टिकोण से संस्कृति की समस्या को उठाते हैं, मेरा दृष्टिकोण तो विशद सांस्कृतिक है। मुसलमानों ने

अपने सदियों के शासनकाल में इस देश की संस्कृति को तबाह किया है। सोमनाथ, विश्वनाथ और हजारों मंदिरों का तोड़ा जाना, हमारे असंख्य अमूल्य ग्रंथों का हम्मामों में जलाया जाना, जबर्दस्ती डोले मंगाना, जज़िया वसूल करना—इस देश के इतिहास द्वारा इनकी बर्बर संस्कृति की ऐसी अनेक स्मृतियां आज भी लोगों के दिलों में ताज़ी हैं। यह बात मैं किसी द्वेष या साम्प्रदायिक भावना को उभारने की गरज़ से नहीं कह रहा हूँ। फिर भी सत्य सत्य हैं, और हम उसे नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।”

मोहन ने बड़े ध्यान से मेरी बातों को सुना और टंडे तरीके से जवाब दिया: “बिल्कुल सही है; परन्तु जब हम न्याय करने बैठें तो दोनों पक्षों का उचित विचार करना चाहिये। हमारी वैदिक सभ्यता के प्रतीक इन्द्र ने अनार्यों के नगर के नगर जलाकर पुरन्दर की पट्टी पाई थी, मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने केवल तपस्या करने के अपराध में शूद्र की हत्या की थी, नीति के महान् व्याख्याता पितामह भीष्म ने अम्बा अम्बालिका आदि के डोले छीन कर, और धर्मराज युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी को जुए की बाजी पर चढ़ा कर नारी जाति का घोरतम अपमान किया था। बतलाइये फिर हम किस संस्कृति से घृणा करें और किससे न करें? पर सवाल तो इस समय सिर्फ संस्कृति का ही नहीं, सवाल व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र या जाति को एक-सत्ताधिकार से मुक्त कर समाज को राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का है। लेकिन संस्कृतियों की बात उठा कर यही मूल समस्या और उलटा कर दिखाई जा रही है। मैं कहता हूँ कि अगर संस्कृतियों के बंटवारे की बात भी आप करते हैं तो आपको यह भी मानना चाहिये कि इस देश में सिर्फ दो ही संस्कृतियां नहीं, बल्कि अनेक हैं। हर प्रान्त की अपनी संस्कृति है—सामाजिक रीति रिवाज, नृत्य-संगीत, उत्सव मेलों की परिपाटियां जुदा-जुदा हैं। जातियां तक अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को लेकर बँट जाती हैं, और यहीं तक नहीं, एक दीवाल के फासले को लेकर घर-घर के

रीति-रिवाज में फर्क आ जाता है। “संस्कृति तो एक ऐसा भोला-सा शब्द है जिसे बरगला कर हम एक दो नहीं, अनन्त समस्याएँ उठाकर खड़ी कर सकते हैं। और तब देश को सिर्फ दो ही हिस्सों में नहीं, चप्पे चप्पे भूमि में बांटना पड़ जायगा। दरअसल संस्कृति तो मानव प्रकृति की विविधता को सुरक्षित रखते हुए भी उसे एक सूत्र में बांधती है।”

मैं अपने नौजवान साथी की बातों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका, फिर भी अपने बड़प्पन और साहित्यिक प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए बोला : “खैर, इसी तरह सही; मगर तुम भी तो इसी बात का समर्थन करते हो कि देश का बंटवारा नहीं होना चाहिये।”

“जरूर समर्थन करता हूँ, मगर समस्या को सांस्कृतिक दृष्टि से देखकर नहीं। मैं तो यह मानता हूँ कि इस समय संस्कृति का सवाल ही बिल्कुल बेहूदः ओर झूठी तोर पर उठाया गया है। इसकी आड़ लेकर यदि देश का बँटवारा हो गया—जैसा कि मुझे लगता है कि अँग्रेजों की कृपा से हो जायगा—तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों ही आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं के भीषण दलदल में फँस कर अपनी स्वाभाविक प्रगति को खो देंगे। बँटवारे से इस देश को भयङ्कर गरीबी और दुश्चिन्ताओं का सामना करना पड़ जायगा।”

“ठीक कहते हो मोहन ! मगर अब तो ऐसा लगता है कि बंटवारा होकर ही रहेगा। यह देशव्यापी दंगों की लहर देख रहे हो ? लीग द्वारा इंटरिम गवर्नमेन्ट का बायकाट करने की चाल देख रहे हो ? महात्मा गांधी और कांग्रेस की महत्वाकांक्षाएँ विफल होकर ही रहेंगी। हमें अस्त्रियत को जल्द से जल्द स्वीकार कर ही लेना चाहिये जिससे कि यह अमानुषीय अत्याचार बन्द हो। बंटवारा ही सही, किसी तरह शान्ति तो स्थापित हो।”

“शान्ति !” मोहन ने व्यङ्ग्यपूर्वक हँसकर कहा : “अभी कोसों दूर है। अभी तो असली जिन्ना लोग छिपे ही पड़े हैं। आखिर कब तक

आर्थिक और एकसत्ताधिकार की समस्याय आम जनता के सामने खुलकर नहीं आयेंगी ? अब इन पूजापतियों और साम्राज्यवादियों का नंगा नाच देखियेगा । तभी संस्कृतियों के भी गुल खिलेंगे । हमें अब इनसे निबटना ही होगा, तभी शान्ति आयेगी ।”

सुमित्रा चाय लेकर आ गईं । मोहन छोटे बच्चे की तरह खिल उठा : “खरी शान्ति तो चाची जी लाई हैं इस वक्त ।” फौरन ही प्याला उठाकर एक घूंट पीते हुए उसने फिर कहा : “मैं तो आते ही कहनेवाला था फिर संकोच कर गया ।”

“घर में कैसा संकोच बेटा । तुम्हें माँग लेना चाहिये था ।”

“हां, यही मैं भी अब सोचता हूं । पर सच कहूं, पहले पहल परिचय हुआ था, हिम्मत नहीं पड़ती थी । सोचता था शायद सब चीजों के लिए आपके यहां समय की पाबन्दी होगी :”

“चाय के साथ कुछ खाओगे मोहन ? ” मैंने पूछा : “बिस्किट्स, चीज़ ?”

वैसे ही, मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि तितली एक प्लेट में बिस्किट और केले लिये चली आ रही है । ट्रे में ही तश्तरी रखते हुए मोहन की ओर तीव्र मुग्ध दृष्टि डालकर उसने कहा : “चीज़ अभी लाती हूं मिस्टर मोहन ?”

और वह तेज़ी से चली गई । सुमित्रा की मुख-मुद्रा कठोर हो गई । मैंने उनसे पूछा : “तितली अभी तक सोई नहीं थी क्या ?”

“मेरे सामने तो सो रही थी ।” सुमित्रा ने रुखे, डूबे स्वर में उत्तर दिया । तितली एक प्लेट, चीज़ का डिब्बा और बटरनाइफ लेकर आ पहुँची ।

सुमित्रा ने कड़े स्वर में पूछा : ‘तू कैसे जाग उठी ?’ कहकर उसके हाथ से चीज़ का डिब्बा लेने लगी । तितली चतुराई और फुर्ती से माँ के पास से हटकर मोहन की कुर्सी के पास आ गई, और जमीन पर प्लेट रखकर डिब्बे से चीज़ का टुकड़ा काटती हुई बनावटी भोलेपन

साथ बोली: 'म सोई ही कब थी। पापा जी और मि० मोहन की बातें सुन रही थी मैं तो।'।

'नो मिस्टर प्लीज', मोहन ने छेड़खाना के साथ आंखें बचाते हुए कहा: मुझे 'भाई कहना, भाई। तुम्हारे इतनी ही तो मेरी कृष्णा भी होगी।'।

मेरी आंखें तुरन्त सुमित्रा की ओर उठ गईं। देखा उनकी कठोरता गल रही है। स्निग्ध दृष्टि और उल्लसित स्वर से उन्होंने कहा: 'ठीक तो कहता है। तेरा भाई हुआ। इसके पिताजी तेरे पापा के दोस्त थे, एकदम भाई की तरह।' फिर मोहन की ओर देखते हुए करने लगी: 'अपने हिन्दुस्तानी रंग का का चलन तो इसे आता ही नहीं भैया। जैसे समाज में रहो वैसा ही चलन आता है।' मुलित्रा तितली के पास पहुंच गई। उसके हाथ से छुरी और डिब्बा लेते हुए आदेश भरे स्वर में कहा: 'जा सो।—जा।'।

तितली बेमन से उठी और मुंह फुलाकर धम-धम पैर पटकती चली गई।

मैं मन ही मन गोता खा गया था। तितली में निर्लज्जता कितना हठ पकड़ गई है। जाहिरा तौर पर उसने कोई कुव्यवहार नहीं किया, फिर भी जिस मानसिक स्थिति में वह इस समय आई थी, उसे देखते हुए मैं सोचने लगा कि उसके मन में क्या एक बार भी यह विचार नहीं उठा होगा कि यहां उसके मां-बाप भी बैठे हैं। जबसे उसका स्कूल जाना बन्द हुआ है, वह बन्धन और कड़ी निगरानी में रहती है। जाहिरा तौर पर उसके लाड़ प्यार में किसो प्रकार की कमी नहीं आई। मां के साथ घूमने भी जाती है, पिकचरें भी देख आती है। पहले तो उदास रहा करती थी, इधर काफ़ी अरसे से ठीक-ठीक रहने भी लगी है। उसके इस समय के साहस को देख कर मैं सोचने लगा, अतृप्ति का हठ भी कितना प्रबल और अंधा होता है। मगर इतनी कच्ची उम्र में इतनी तीव्र अतृप्ति उसमें सहसा आई ही कैसे?

सुमित्रा मोहन से पूछ रही थी: 'अपनी बहन का ब्याह कब करोगे बेटा ? घर-बर देख रहे हो कि नहीं ।'

'मां और दादी को तो बहुत चिन्ता है, पर मैं अभी तैयार नहीं जी । इस साल इण्टर का इम्तहान देगी । सोचता हूं बी. ए. कर ले । तब तक मैं भी डॉक्टरेट हासिल कर कोई अच्छी-सी नौकरी पा जाऊंगा ।

'मास्टरी प्रोफेसरी में कौन सी बड़ी आमदनी हो जायगी ? सरकारी नौकरी क्यों नहीं करते ? तुम्हारे चाचा जी कोशिश कर देंगे ।'

सुमित्रा यदि किसी की छोटी-सी बात से भी संतुष्ट हो जाती हैं, तो उसे पुरस्कृत करने की लालसा रखती हैं । इस समय तो मैं भी संतुष्ट था, कुछ उसके विचारों से, विनय से, मुहल्ले और पुराने संबंध के कारण भी, और कुछ यों ही—अनायास । मोहन में अपनी ओर आकृष्ट करने की सहज शक्ति है । मैंने कहा: 'ठीक कहती हैं तुम्हारी चाची । पी. सी. एस. के इम्तहान में बैठ आओ । I' ll see that you get through. फिर रफ़ता-रफ़ता आई. सी. एस.—'

'जीवन में पैसा ही सब कुछ नहीं होता चाचा जी । मेरे सामने उद्देश्य भी है । ऐसे संक्रान्तिकाल में बुद्धिवादियों ने यदि जनता को विकास के सच्चे नियमों और सिद्धान्तों से परिचित न कराया, स्वार्थी सत्ताधारियों का नाश कर नया समाज बनाने में सक्रिया सहयोग न दिया तो उनका सारा पढ़ना लिखना और सोचना बेकार है, उनका जीना ही बेकार है ।.. मैंने यह भी देखा है कि ऐसे लोग जब समय के साथ आगे नहीं बढ़ पाते तो हठ के साथ समाज को पीछे ढकेलने लग जाते हैं । मैं अपनी ज़िदगी को इतनी बड़ी गलती नहीं बनाना चाहता ।'

लड़के का एक-एक वाक्य मेरे आभ्यन्तर को गंगाजल के छोटों की तरह पवित्र और शीतल बना रहा था । भयङ्कर ऊहापोह में चार वर्षों से कैद मेरी अन्तरात्मा की यह पुकार थी । यह नवयुग की, नए खून की सच्ची पुकार थी जो मुझे ललकार रही थी ।

छुट्टी के बाद काम का चाज लेने के एक ही दो रोज़ बाद मुझे अपने बंगले पर एक गुमनाम ख़त मिला जिसमें सूचना दी गई थी कि दस दिनों के बाद एक निश्चित तारीख़ को, निश्चित समय पर नगर में तथा जिले के सात-आठ गांवों में एक साथ मुसलमानी बस्तियों पर हमला होगा। उस पत्र में उस मुहल्ले का नाम और पता भी दिया गया था जहां कि हथियार इकट्ठा हो रहे हैं, साथ ही यह भी बतलाया गया था कि इसी बीच में एक निश्चित तारीख़ को पास की एक रियासत से देसी बंदूकों, कारतूसों और तलवारों से भरी हुई ट्रक, जलाने वाली लकड़ियों से ढंकी हुई उस घर पर पहुँचने वाली है। पत्र लेखक ने यह सूचना भी दी थी कि मध्य प्रदेश के एक हिन्दूराष्ट्रवादी कार्यकर्ता इस धर्मयुद्ध का संचालन करने के लिए यहाँ आये हुए हैं। पत्रों में कुछ स्थानीय जमींदारों और धनीमानी लोगों के नाम भी दिए गए थे जो इस षड्यंत्र में शामिल थे। पत्र लेखक ने नगर से बाहर उस स्थान का परिचय भी दिया था जहाँ युवकों को निशानेबाजी, लाठी तलवार आदि चलाने की शिक्षा नियमित रूप से दी जा रही है।

मैंने तुरन्त डी. एस. पी. को फोन करके इसकी सूचना दी। उन्होंने बतलाया कि उन्हें भी एक ऐसा ही ख़त मिला है, और उन्हें इस ख़बर की सचाई पर संदेह है। फिर भी मेरे आग्रह पर उन्होंने तहकीकात करने का वादा किया। दूसरे दिन किसी काम के संबंध में वे मुझसे मुलाकात करने आये। काम की बातें हो जाने पर जब मैंने उनसे इस संबंध में चर्चा चलाई तो वे हँसकर बोले : 'हज़ूर भी किस फ़िक्र में पड़े हुए हैं ? अरे मरने दीजिये सालों को। अब तो डिपाटमेंट में ही खुल्लमखुल्ला फ़िरका-परस्ती चल गई है। जहाँ जिसका बस चलता है वह अपनी कौमवालों की मदद करता है। देखिये न, गुलाममुहम्मद ने पुर, में कैसा

खून खराबा करवाया है, दारोगा पीरइलाही, वही जो पहले अपने यहाँ थे, उन्होंने अपनी पूरी तहसील उजड़वा दी मुसलमानों से। और सच पूछिये तो हिन्दू बेचारे तो कभी लड़े ही नहीं, आज तक। अब जरा जोश आया है हमारे नौजवानों में तो इन्हें भी होसले निकाल लेने दीजिये। साले बहुत पाकिस्तान-पाकिस्तान चिल्ला रहे हैं। जहन्नुम में ही बनेगा पाकिस्तान अब।' कहकर डी. एस. पी. कृष्णासहाय बड़ी रूखी हँसी हँसे। मैं समझ गया कि इन लोगों की जानकारी में ही यह षडयंत्र रचा जा रहा है। अधिक कहना व्यर्थ था। मैं अगर जोर देता तो तहकीकात जरूर होती, मगर वहाँ कुछ न निकलता। सरकारी तंत्र में एक विशेषता है कि बुराइयाँ फेलाने में उसकी मशीनरी जितनी तेज़ी के साथ काम करने लग जाती है, बुराइयाँ दूर करने में उसे उतनी ही देर लगती है। ब्रिटिश अनुशासन में हमने यही शिक्षा पाई है। हममें से अधिकांश आमतौर पर इस बात को सिद्धान्ततः स्वीकार करते हैं कि सामाजिक बुराइयों पर ही हमारी सत्ता टिकी हुई है। अतः हममें से हर एक अपनी सत्ता की रक्षा के लिए सामाजिक विकारों का यथा सम्भव पोषण करता है।

सच कह दूँ, आज से कुछ वर्ष पहले तक अपने सहयोगी अफसरों की इच्छा के विरुद्ध जाने के बजाय सत्य के प्रति होने वाले अन्याय को मैं थोड़ी सी मानसिक ऊहापोह के बाद पी और पचा सकता था। आज भी किसी ऐसी-वैसी बात पर खामोश रहने में मेरी आत्मा अधिक न कचोटती। पर यह सामूहिक हत्याकांड का प्रश्न था। मेरी करुणा उद्वेलित हो उठी। '४२ में अपने कुर्सी-बैंगले और सत्ता के लिये मैंने अपने आपको आत्म-विहीन कर अपने देशवासियों का खून बेचा था।

मैं अपने सहयोगियों द्वारा रचे गये इस षडयंत्र का व्यूह भेद करं हजारों व्यक्तियों की जान बचाने में तो अवश्य सफल हो गया, मगर

मेरी जान को हजार बाधाएँ लग गईं। नौकरशाही तंत्र में यह विशेषता है कि एक दूसरे की नाक रगड़ने की ताक में बराबर लगे रहने पर भी नौकरशाह पारस्परिक स्वार्थ की कड़ियों में एक दूसरे से अटूट रूप से जुड़े रहते हैं। दूसरों की नाक रगड़ने और दूसरों से अपनी नाक रगड़वाने का चिर-आतंकमय व्यवहार अब उनका स्वभाव बन गया है। उनका स्नायु-तंत्र चौबीसों घण्टे खिंचाव और झकोलों में ही रहता है। झूठी जिन्दगी ही उनकी अस्तित्व बन जाती है। यदि कभी कोई उस दावरे से छिटक कर अलग जाने का प्रयत्न करता है, कर्तव्य-सत्य के पथ पर बढ़ने का प्रयत्न करता है तो चारों ओर से उस पर निर्मम बज्र प्रहार होने लगता है। ब्यूराँक्रेसी में दबने और दबाने का अनन्त नाटक नित्य नये (किन्तु मूलतः एक जैसे ही) दृश्यों का उबानेवाला क्रम लेकर चलता रहता है। यहाँ महत् उद्देश्य नहीं, किसी बड़ी भावना का व्यापक प्रसार नहीं। अंग्रेज गये, काँग्रेस आई, हम सबके सब अनन्य देश भक्ति का साइनबोर्ड लगाए उसी तरह घूमने लगे। जैसे अंगरेजों के समय में राजभक्ति की साँसें भरा करते थे। इस देश भक्ति का साइनबोर्ड लगी हुई दूकान के भीतर साम्प्रदायिक विष का स्टॉक भरा हुआ था।

अफ़सरी से अधिक गंदा पेशा शायद और कोई नहीं। केवल आज की नेतागिरी ही इससे होड़ ले सकती है। दोनों का ही अन्तर खोखला होता है। नेता उसे टुच्चेपन से भरता है और अफ़सर रौब से। अफ़सर केवल रौब का पुजारी है। वह केवल रौब जमाना चाहता है, जमाता है—और कुछ नहीं चाहता, कुछ नहीं करता।

मेरे चारों ओर रौबीले काँटों का जंगल उग आया। मेरे सहयोगी अफ़सर मुझसे नाराज़ हो गए। मेरे विरुद्ध हर जगह कान भरे जाने लगे। मेरा तबादला हो गया। मैं एक छोटे कस्बे में, यानी एक तरह से पद घटा कर भेज दिया गया।

अनेक प्राण बचाने और देश को प्रगति के पथ पर बढ़ाने में प्रयत्नशील होने का यह पुण्य फल मुझे प्राप्त हुआ ।

[६]

सलीमपुर पैतालिस हजार की आबादी का एक कस्बा है अभी यहाँ नल और बिजली ने प्रवेश नहीं पाया । सलीमपुर खास तौर पर तहसील और कचहरी होने की वजह से आबाद है । अमले वकील मुहर्निर अधिक हैं । अक्सर पैशनेबिल अफसर सोसाइटी पाने की लालच से बड़े मंडी वाले कस्बों की अमलदारी छोड़कर ऐसी जगहों में रहना अधिक पसन्द करने हैं । मैं यहाँ ए० डी० एम० होकर आया था । यद्यपि पद मेरा पहले भी यही था परन्तु बरसों से, अंग्रेजों के जमाने से, मैं जिलाधीश का कार्य करता चला आया था । उस पद पर मुझे स्थायी करने के बजाय मेरे पुराने पद पर लौटाकर भेज देना उसी तरह का सरकारी दण्ड है जिस तरह बीच बाजार किसी भले आदमी को कोई पाँच जूते मार दे ॥

मेरा अफसर एक नौजवान आई० ए० एस० था, पहले बेच का आई० ए० एस० था । उसकी तुनुकमिजाजी और नासमझी न मुझे नाकों चने चबवाने शुरू किये । हर छोटा बड़ा अफसर यह समझता था, कि सरकार मुझसे अप्रसन्न है, मुझे नालायक मानती है । बरसों तक जंगल में अकेले शेर की तरह राज करने की आदत के बाद यह हर रोज की हुजूरबदारी मेरी जान पर आ रही थी । घर में भी चैन न था । मेरी चिड़चिड़ाहट ने खुद मुझे ही अपनी कैद में बेबस कर दिया था । मुझमें और मेरी पत्नी में अग्ये दिन की कलह घर कर गई थी । बच्चों की निगरानी उचित रूपसे नहीं हो पा रही थी—यह मुझे अब अनुभव हो रहा है ।

मैं तो समाज से बिलकुल ही सम्बन्ध विच्छेद कर एकांत में पुस्तकों में ध्यान जमाकर बैठ गया था, परन्तु सुमित्रा ने समाज से उचित निभाव रक्खा । बल्कि यों कहूँ कि मेरी एकांतप्रियता का हठ देखकर

सुमित्रा ने समाज में उचित से कुछ अधिक ही व्यवहार बरता। मेरे पदच्युत होने से वह बेहद डर गई थी। चौकन्नी हो गई थी। अफसर समाज में रहकर बहुत से शत्रु पालना ज़वतरे से खाली नहीं और सबसे कटकर अलग बैठ रहने से भी तरह-तरह की भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं—यह मैं अच्छी तरह समझता था परन्तु मैं चिढ़ के साथ इस समझ को पीछे ठकेल कर अपने वर्ग से नफ़रत करता था। जहाँ इतनी विनाशात्मक, स्वार्थ-भरी वृत्ति हो वहाँ मेरे मन का समाधान भला कैसे होगा ? अस्तु !

अफसर-पत्नियों के समाज में एक स्थानीय इण्टरमीडिएट कॉलेज में साइंस विभाग स्थापित करने के लिए रुपया जमा करने का एक सांस्कृतिक उपाय सोचा गया। डिप्टी केन साहब के बारे में अक्सर यह चर्चा मशहूर हुआ करता है, और खुद डिप्टी केन साहब का भी यही ख्याल है कि वे अल्मोड़ा के उदयशंकर कल्चर सेंटर में बरसों तक डांस सीख चुके हैं। उनकी सौभाग्यवती ने अन्य अफसरों की सौभाग्य-वतियों को यह वचन दे दिया कि वे 'बच्चू को डेली टू आवस रिहसंल्स' लेने के मजबूर कर देंगी। सब जज साहब की श्रीमती ने अपने कॉलेज के ज़माने में एक एकांकी लिखा था, उसे उन्होंने अपने कॉलेज में 'खूब सक्सेज़फ़ुली प्रोड्यूस' भी किया था। उन्होंने फिर उसी नाटिका को प्रोड्यूस करने का व्रत लिया। कुछ अफसरानियाँ टिकिट बेचने के शुभ-कार्य में लगीं। वैरायटी प्रोग्राम का आयोजन धूमधाम से चल निकला।

सलीमपुर के अफसर वर्ग में एक सांस्कृतिक हलचल आ गई। उत्तर-प्रदेश के छोटे नगरों और कस्बों में लखनऊ आदर्श के रूप में पुजता है। मिसेज़ सब जज और मिस्टर डिप्टी केन बार-बार यही रोते थे कि सलीमपुर में बिजली नहीं है वरना वे लखनऊ, यहाँ तक कि दिल्ली बम्बई आदि को भी मात कर देते।

तितली नाटक में हीरोइन तथा नृत्य आयोजन में एक नर्तकी का काम कर रही थी। तितली पर कड़ा अनुशासन रखने वाली सुमित्रा ने भी सामाजिक कार्य के लिये अपना अनुशासन ढीला कर दिया था। तितली उन दिनों बेहद प्रसन्न और उत्साहित दीखती थी। मिस्टर डिण्डी केन चूँकि रिहर्सल में पूरा समय नहीं दे सकते थे इसलिये उन्होंने पास की एक भूतपूर्व रियासत से अपने एक परिचित नर्तक को नृत्य शिक्षा देने के लिये बुलवा लिया था। तितली सुबह शाम रिहर्सल में जाती थी।

नाटक के दिन शाम से ही तितली और नृत्य-शिक्षक का कहीं पता न था। चारों ओर उनकी तलाश होने लगी। डिण्डी केन साहब के नृत्य आयोजन में एक नर्तकी कम हो गयी, मिसेज़ सब-जज के नाटक की हीरोइन ऐन वक्त पर गायब हो गयी, और मेरा और सुमित्रा का तो मानो सब कुछ लुट गया था।

मुझे इस घटना की सूचना देर से मिली; महसूस हुआ कि कलेजे पर पहाड़ फट पड़ा। तितली दूसरी बार सार्वजनिक रूपसे हमें कलंकित कर गयी थी।

अस्सी मील की रफ्तार से गाड़ी हाँकता हुआ मैं उस रियासत की ओर चला जहाँ नृत्य-गुरु का स्थायी ठिकाना मुझे बतलाया गया था। मेरे साथ नाज़िर मदोदय भी थे। वही उस समय मेरी उत्तेजित बुद्धि का संतुलन-संयमन भी कर रहे थे। रियासतों में महाराजाओं का पुराना दबदबा अब भी काम करता है। रियासत में पहुँचने पर सुराग-रसी करने पर अपने कुछ परिचितों से हमें मालूम हुआ कि नर्तक महोदय हिज़ हाइनेस के मुँह लगे मुसाहबों में से हैं, तथा उनके मनोरंजन के लिये अबसर सामान मुहय्या किया करते हैं। मेरी लड़की किसी के शौक़ का खिलवाड़ बने यह मैं हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर पाता था। इच्छा होती थी कि रियासत में जिसे पाऊँ उसे शूट कर दूँ। नाज़िर मुझे बार बार सँभाल लेते थे। मैं

शहर में कहीं न दिखलाई पड़ूँ इसके लिये उन्होंने वचन लेकर मुझे उस घर की सीमा में बाँध दिया जहाँ हम मेहमान थे। दिन भर वे गाड़ी लेकर सूर्यागारसी के लिये इधर से उधर घूमते थे। उन्हें यह पता चल गया कि तितली अभी राजमहलों में नहीं पहुँचाई गयी। और तीसरे दिन, जबकि नर्तक राजमहल की ओर गया था, उन्होंने उसके घर में प्रवेश किया। तितली की माँग भरी हुयी थी, उसके हाथों में हरे चूड़े थे। नाज़िर जी को देखकर तितली सन्न रह गयी। उन्होंने एक क्षण भी न खोकर उसे हाथ पकड़कर बाहर घसीटा और कार में जबरदस्ती बिठाकर ले चले। तितली ने अपनी हिस्टरिक आदत के बमूजब चीखना काटना शुरू किया। जिन सड़कों से उनकी कार गुज़री उन पर एक तमाशा खड़ा हो गया। थोड़ी देर में पुलिस की गाड़ियाँ भी सचेत हो गयीं। जनता में तेज़ भागती हुयी कार से सनसनी फैल गयी थी।

रात के डेढ़ बजे मेरी कार मेरे मेहमान के बँगले में दाखिल हुयी तितली के मुँह में और हाथ पैरों में कपड़ा बँधा हुआ था, नाज़िरजी बुरी तरह से घबराये हुये लथपथ हो रहे थे। हम जिन अफ़सर महोदय के मेहमान थे उन्होंने हमारी पूरी पूरी सहायता की। हमें बराबर ख़बरें मिल रही थीं; हिज़ हाइनेस के हुक्म से शहर के नाके नाके और बाहर की चौकियों तक पर कड़ी निगरानी रक्खी जा रही थी। चारों ओर पुलिस का जाल फँला था। मैं अपनी ही लड़की को दुष्टों के चंगुल से बाहर निकालकर ले जाने में गुनहगार साबित हो सकता था। मेरी नौकरी पर भी आँच आ सकती थी। तितली की माँग में सिद्धर डालकर विवाह के जिस कानूनी नाटक को सम्पन्न किया जा चुका था वही इस समय मेरे लिये कानूनी तौर पर सबसे बड़ी रुकावट थी।

एक सप्ताह तक हम निकल न सके। मेरे आतिथेय वास्तव में सज्जन पुरुष थे। उन्होंने बहुत बड़ा खतरा मोल लिया था। उन्होंने किसी

प्रकार सलीमपुर की ओर जाने वाली मेल ट्रेन के ड्राइवर को अपने साथ मिलाया। तितली का वेश-परिवर्तन करा नव-वधू के रूप में धूँधट काढ़ कर गाड़ी पर बिठाया गया। मैं उसके पास ही पिस्तोल लेकर बैठा था। मैंने तितली से कह दिया था कि उसके मुँह से एक शब्द या एक चीख निकलते ही मैं अत्यन्त निर्मम होकर उसकी जान ले लूँगा। सिगनल पार करने के बाद गाड़ी एक बँधे हुए संकेत स्थल पर रुकी। हम वहाँ पहुँच चके थे। फ़र्स्ट क्लास के एक कम्पार्टमेंट में, जिसमें नाज़िर जी पहले ही से बैठे हुये थे; हमने जल्दी जल्दी प्रवेश किया। ट्रेन चल पड़ी। मेरे उपकारक बन्धु रात के अंधेरे में गुप्तदान की तरह छिप गये।

जीवन की इन दो घटनाओं ने मुझे बुरी तरह से झिझोर दिया था। देश आखिर इस समय जा कहाँ रहा है! एक ओर उसपर नौकर-शाही कल्चर का प्रभाव है, दूसरी ओर पूँजीवाद के कोढ़ स्वरूप फिल्मी 'संस्कृति का। बहु प्रशंसित महा ऐश्वर्यमयी भारतीय संस्कृति, मानवीय संस्कृति आदि की बातें इस समय ढकोसला लगती हैं। स्वतन्त्र होने पर भी देश सांस्कृतिक अगति से जड़ हो रहा है। मैं अपने जीवन से ऊब उठा था। मुझे चारों ओर घुटन महसूस हो रही थी। इच्छा होती थी कि यह सब कुछ छोड़ छाड़ कर किसी ऐसी जगह चलकर रहूँ जहाँ अपने बच्चों को उचित शिक्षा दे सकूँ, अपनी कार्य-शक्तियों का उचित उपयोग कर सकूँ। मैं पुनः अपने लेखक को जगाना चाहता था, इस अगति से बचना चाहता था।

×

×

×

सुमित्रा अन्त में राजी हो गयी हैं और मैं त्याग पत्र देकर अब सपरिवार इसी कुस्बे के पास एक गाँव में बसने जा रहा हूँ, जहाँ मेरे हमारे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होगा। अफ़सरी अलविदा! हम लेखक होकर महान् सुखी होंगे।

